R. S.

आदर्श भारती महिलायें

लेखक—
दातादयाल महर्षि शिवव्रतलाल वर्मन एम० ए०

सम्पादक—
नन्दूभाई
(निज़ामाबाद दकन)

प्रथमवार १०००

छापने का अधिकार स्वाधीन

मूल्य ।।।)

सम्पादकीय—

सब दुनियां अपना काम योग के आधार पर कर रही है। पर उसकी समझ नहीं रखती। और योग को केवल परमार्थ की कमाई का साधन समझ रक्खा है। जो कार्य किया जाता है वह योग के नियम के अनुसार है। उससे भिन्न नहीं है। पर भेद क्या है? जो अन्तर का कारण है? भेद यह है कि लोगों ने व्यवहार और परमार्थ को अलग २ मान रक्खा है। वे जानते हैं कि यह और विषय है और वह और विषय है। परमार्थ के लिये हित चित से नेक बनने की ज़रूरत है और व्यवहार के विषय में उसकी ऐसी आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। बनिये लोग कहते हैं कि यदि हम सत्य बोलें तो संसार का एक काम भी न चले। दुनियां काम झूंठ और धोखे बाज़ी से चलता है। यह एक भारी भूल है। झूंठ का तो अस्तित्व ही नहीं है। वह केवल नफी, अन हुआ, नकारात्मक है। सत्य के अभाव का नाम झूंठ है। और जो वस्तु तीनों काल में अपना अस्तित्व (हस्ती) नहीं रखती हो वह किसी का आधार कैसे बन सकती है? बंज व्यौपार और काम काज सब सत्य के ही आधार पर चलते हैं। एक को दूसरे का विश्वास होता है तब ही तो लेन देन हुआ करता है। विश्वास न हो तो कौन किस को दे और कौन किस से ले। यह तो एक अनाड़ी मनुष्य भी समझ सकता है। पर जिसको देखो वह झूठ के व्यर्थ भ्रम में फंसा हुआ दीखता है। यह ही भ्रम है। धोखा है।

जो वस्तु न हो और उसका अस्तित्व वृथा मान लिया जाय तो वह ही भ्रम है। भ्रम संस्कृत धातु 'भरम' से निकला है। जिसका अर्थ चक्कर लगाना है। रथ के पहियों के समान अज्ञान के वश में घूमते रहना भ्रम है। और उसी का नाम

आवाममन है। माया भी उसी को कहते हैं। जो अनहुई भासती है वह ही तो माया है। माया केवल अनहुई है। नकारात्मक है, Negative है। झूठ को व्यर्थ लाभदायक और सत्य मान लेना ही माया है। अनाड़ी इस मिथ्या माया में फँसे व्याकुल हो रहे हैं और यथार्थ में देखो तो यह चिंता नितांत भ्रम और व्यर्थ है। भ्रम और असत्य वस्तु का दूसरा नाम प्रपंच है। और इसी प्रपंच को लोक समझ लिया गया है।

यदि यह भले प्रकार समझ लिया जाय कि जो कुछ है वह सत है और सब सत के आधार पर ही है और इसी सत का व्यौपार किया जाय तो फिर यह लोक स्वयं परलोक बन जाय। परलोक को सब सत्य मान रहे हैं। और लोक को झूठ कह रहे हैं। इसमें सार का नाम निशान तक नहीं है। नकारात्मक नेति, (नफी) के भावों के प्रभाव में आ रहे हैं। इसी कारण दुख हो रहा है। नकारात्मक भावों को मिटाकर, यदि मन सकारात्मक भावों को दिया जाय, तो लोक तत्काल और उसी क्षण परलोक का रूप बन जाय। और यह लोक भी परलोक के समान प्रतीत होने लगे।

अब यह विषय किसी कदर समझ में आगया। जान लिया कि व्यवहार का आधार असत नहीं बल्कि सत है और यह ज्ञान ही जीवन का पलटने वाला है। जहाँ सत का प्रेम हो गया फिर व्यवहार भी परमार्थ बनना शुरू हुआ।

सत का प्रेम परमार्थी जीवन का आदि है। सच बोलो, सच सुनो, सच में मन लगाओ, सच से सम्बन्ध रक्खो। केवल इतना ही करो और तुम परमार्थी बन जाओगे। पर कहना सहज और करना कठिन है। क्योंकि भ्रम और अज्ञान के ऐसे वशीभूत हो रहे हैं कि उनके छोड़ने से जान निकलती है। आश्चर्य है, कि व्यर्थ के भ्रम ने किस प्रकार अनजान जीवों को

बुरी तरह से अपने आधीन बना रक्खा है, वशीभूत कर रक्खा है। बात कुछ है और वह समझते कुछ हैं। इससे अधिक विचित्र और अद्भुत विषय और क्या हो सकता है ?

जब सन्तों, साधुओं, ज्ञानियों, और बुद्धिमानों ने देखा कि जीव किसी प्रकार भी इस भ्रम को त्यागने वाले नहीं हैं तो उसी प्राकृतिक नियम को जिसका ऊपर वर्णन हो चुका है और तरह यह व्याख्या करना शुरू किया। और इसका नाम योग रक्खा गया। उसके नियम और साधन गढ़े गये। और सत की दर्जे बन्दी श्रेणियाँ करते हुये साधकों की दृष्टि ऊँची करने का उपाय सोचा, जिससे वह किसी प्रकार बन्धन से छुटकारा पावें। और उनको साधन और यत्न करने की विधि बताई गई। और समझाया गया कि यह योग का प्रयोग है। करनी को स्पष्ट रूप में हृदयांकित कराकर उससे मनुष्य का सम्बन्ध कराना ही योग का प्रयोजन है। योग नाम है मिलाप का। (एति) अथवा सत से मिलना। नेति अथवा असत से अलग होना। यही योग है। मन का पात्र जो भ्रम, भूल भटक और व्यर्थ के विकारों से भरा हुआ है उसको खाली करना और शुद्ध, पवित्र, सूक्ष्म और स्वच्छ भाव व विचारों का भरना यह योग है।

जब मनुष्य इधर से दुखी होकर उधर गया और धीरे २ साधन करने लगा तो समझ लेना चाहिए कि जल्द या देर में वह सुधर जायगा। जिसमें अनुभव के बढ़ने के साथ वैराग बढ़ गया वह तो शीघ्र ही अपना काम बना लेगा। यदि वैराग में कमी है तो थोड़ा समय लगेगा। पर यहाँ एक और कठिनाई प्रतीत होती है कि चित्त के स्थिर होते ही मन में अनेक प्रकार की शक्तियां पैदा हो जाती हैं जो सिद्धि शक्ति कहाती हैं यह शुभ लक्षण या गुण नहीं है। क्योंकि इनका मूल अज्ञान है। और सूक्ष्म मन अज्ञान से सम्बन्ध रख कर अधिक शक्तिशाली हो

जाता है और यदि गुरु ने सहायता देकर सँभाल नहीं की तो उसके भ्रष्ट होजाने की सम्भावना और भय रहता है। यदि इससे बचता हुआ अभ्यासी निकल चले तब तो खैरियत है। वरन् वह फिर अज्ञानी का अज्ञानी है।

सिद्धि और शक्ति क्या हैं ? यह मन की वृतियों के निरोध, सिमटान से जो मन में, विशेष प्रकार के विचारों के सम्बन्ध से, विशेष प्रकार की शक्तियाँ आ जाती हैं, वे ही सिद्धि शक्ति कहलाती हैं। जब किसी एक ख्याल को लेकर वृतियों के सिमटाव और एकाग्र करने के सिलसिले में साधन और अभ्यास किया जाता है तब मन सूक्ष्म होकर उस ख्याल, भाव व विचार में दृढ़ होकर सफलता प्राप्त कर लेता है और यह ही सिद्धि शक्ति है ! दुनियाँ का कोई काम ऐसा नहीं है जो यह मन न कर सके। केवल उसमें तत्पर रहने की व करने की ज़रूरत है। बीज तो उसमें आदि से ही उपस्थित है। केवल अभ्यास के सिलसिले में उसको परिवक्व करके पूर्ण रूप में स्थित कर लेना है। जिधर मनुष्य का मन स्थिर होकर लग गया उधर ही वह विचित्र लीला दिखलावेगा। यह सब कुछ जो हो रहा है मन की ही लीला का दृष्य है।

यह मन क्या है और कैसे बना है ? जैसे इन्द्रियां और इन्द्रियों के भोग एक २ भूत या तत्व से बने हैं वैसे ही मन पांच भूतों के सम्मिलित, सतोगुणी अंश से बना है और उनका सूक्ष्म रूप है। आंख अग्नि से बन कर रूप को देखती है। क्योंकि रूप ही अग्नि का गुण है। कान आकाश से बनकर शब्द को ग्रहण करता है। क्योंकि शब्द आकाश का गुण है। नाक पृथ्वी से बन कर गंध को प्राप्त करती है। क्योंकि गंध पृथ्वी का गुण है। इसी प्रकार सब इन्द्रियों और उनके भोगों, पदार्थों का अनुमान करलो। ऐसे ही मन भी इन पांचों तत्वों के मेल से बना है। और

तत्वों के पांच गुण शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध सबका ज्ञान उसका है। यह उसकी इस से मिलोनी से बनने का सबूत है। तत्वों में से कोई हलका है, कोई भारी है, कोई नजर आता है, कोई नजर नहीं आता। इसीलिये सिद्धि शक्ति भी एक प्रकार से इन ही तत्वों के कारोबार के रूप हैं और मन जिनसे सम्बन्ध पैदा कर लेता है उनही का रूप बन जाता है।

यदि मन को यह पूर्ण (कमाल) हासिल होगया तो रहा इसी प्रपंच के चक्र में। बात क्या हुई? इतने कठिन साधन और तप के करने पर भी तो उसका सम्बन्ध अनस्थिर प्रकृति और माया ही से रहा। और वह संसारी का संसारी ही बना रहा। संसार भ्रम और धोखा है। जो इसमें फंसा वह सुख और दुख ही से पड़ा रहा। और उससे मुक्ति नहीं मिली।

जो सार के संग हो और स्वयं सार न हो वह संसार है। सार तो निज रूप है, जात है हक़ीक़त है। उसके सहारे जो खेल माया का होता है वह संसार है। यह मानसिक, ख्याली और भ्रम है। है नहीं पर भासता है। और जीवों को दुखी कर रक्खा है। आखिर यह क्या है? प्रपंच ने भ्रम में मेरा तेरा पना करते रहना और नाशवान पदार्थों के साथ भ्रमात्मक सम्बन्ध का निश्चय कर लेना और दृढ़ करते रहना, यह ही संसार का वास्तविक रूप है एक अर्थ में धन, मान, बड़ाई, स्त्री, सन्तान को चाहे संसार न कहो। उनका अभिमानी और अहंकारी बनना और उस भाव का दृढ़ करना संसार है। अपने निज स्वरूप से पृथक रहना और उनके मोह ने बन्धन में आ जाने को हम संसार कहते हैं। उसी प्रकार सिद्धि और शक्ति के भ्रम में पड़ना भी संसार बल्कि संसार का बहुत सूक्ष्म और स्थूल रूप है।

यह नहीं कहा जाता कि तुम मन से काम न लो और उसको निकम्बा बना दो। काम तो हर समय मन ही से लेना है। लेकिन

उसके कामों से पृथक रह कर उसकी सहायता से अपने रूप का साक्षात्कार करो। न सिद्धि शक्ति से झमेले में पड़ो और न मौजजे करामात के झगड़े मोल लो, चमत्कार दिखाने से बचो। उनसे प्राप्ति क्या होती है! केवल साधारण मान बड़ाई, वाह! वाह! इनके कारण प्राणी मारे जाते हैं और आवागमन की गुत्थी न सुलझती है और न उससे छुटाकारा मिलता है। मन को जब शरीर के साथ मिलाकार शारीरिक साधन करोगे, पहलवान बन जाओगे और दूसरे मनुष्यों से श्रेष्ठ समझे जाओगे। मन को जब बुद्धि के साथ मिलाकर बुद्धि का साधन करोगे और संसार में मान, प्रतिष्ठा, और हुकूमत आदि प्राप्त करोगे। यदि इसी प्रकार मन को आत्मा के साथ मिलाकर जब आत्मिक अभ्यास करने लगोगे साधु संत के दर्जे में पहुंच जाओगे। शारीरिक पहलवान को मान प्रतिष्ठा एक छोटी सीमा तक है क्योंकि वह सीमित है, महदूद है। बुद्धि के साधन करने वाले, सचिव मंत्री और साहब ईजादों आविष्कारकों का प्रभाव उससे अधिक और विस्तृत होगा। क्योंकि बुद्धि का विस्तार अधिक है। प्रभाव-शाली है। मगर आत्मा सर्व व्यापक है। उसका साधन और अभ्यास करने वाला कुछ का कुछ, अद्भुत और विचित्र हो जायगा। यह आत्मिक अभ्यास का प्रभाव है, नियम है। मगर जैसे और सम्बन्धों के बन्धन में आ जाना परमार्थ नहीं है वैसे साधू योगी और फ़क़ीर की पैरवी, संगत को अपना इष्ट बना लेना भी परमार्थ नहीं है। साधन चाहे वह किसी प्रकार क्यों न हो केवल बीच की श्रेणी है मध्य मार्ग है वह ध्येय या प्रयोजन नहीं है। केवल कारण मात्र है। साधन है और केवल कारण या साधन से ही काम रहा तो यहां तक भी संसार ही बना रहा। इसको भले प्रकार से हृदयांकित करलो। तब आगे बढ़ो। भला होगा।

सिद्धि शक्ति की भावना, मान प्रतिष्ठा की इच्छा, धन दौलत की लालसा और नर्क स्वर्ग की वासना यह सब भ्रम जाल हैं और आवागमन के कारण हैं। आवागमन दुखदायी है। जब तक इनसे सम्बन्ध है। लोक परलोक और स्वार्थ को परमार्थ बनाना असम्भव है। यहां विचार के लिये तुमको एक बहुत अच्छा नुकता, भेद मिल गया। और वह यह है कि लोक इच्छा और पर लोक अनिच्छा का नाम है। जिस विषय से वास्तव में मोक्ष प्राप्त करना है वह घर बार स्त्री सन्तान आदि नहीं है बल्कि वासना है। इच्छा है, कामना है और इसी के बन्धन से छुट जाना निजात और मुक्ति है।

मन में इच्छा पैदा हुई और उसके कारण उसकी हैसियत, अवस्था में अन्तर आ गया। त्रुटि आ गई। परिवर्तन होता चला गया। कभी चंचलता है, कभी आलस्य है और कभी आनन्द है, कभी सुख है। यह तीनों अवस्थायें सत रज और तम हैं। गुणों का बन्धन लग गया। भ्रम पैदा हो गया और यह भ्रम अज्ञान है। अज्ञान का मूल इच्छा है। और अज्ञान में अनेक प्रकार की दशायें उत्पन्न होती हैं। यह इच्छा स्वयं अज्ञान से प्रगट हुई है एक इच्छा से दूसरी और दूसरी से तीसरी निरंतर पैदाहोने लगी। और वे दिन प्रति दिन बढ़ती चली गईं और अपने निज स्वरूप से पृथक और जुदाई शुरू हो गई। सम्बन्ध विच्छेद हो गया। एक ओर अपना रूप है जो चैतन्य है दूसरी ओर वासना है, इच्छा है, जो जड़ है। और इन दोनों के बीच, अन्तर में वासना का मूल है। और इस प्रकार तीनों की मिलोनी से जड़ चैतन्य की ग्रन्थी बनी। यह कहने को तो भ्रम और मानसिक है, ख्याली है पर इसका छूटना महा कठिन है। न यह छूटने में आती है और न जीव को सुख मिलता है।

निज रूप अथवा जात ने इस इच्छा के झमेले में पड़कर

सिफात अथवा प्रकृति के साथ बहमी, भ्रम का सम्बन्ध पैदा कर लिया। जो वस्तु कि असङ्ग थी वह सङ्ग के साथ बँध गई। इस प्रकार लोक का प्रगट होगया। हम अरूप से रूप धारी हो गए। यदि रूप को छोड़कर अरूप के केन्द्र में चले जांय तो अभी यह लोक परलोक में परिवर्तन हो जाय। पर यह सम्भव कैसे है? वासनायें, कामनायें उस ओर जाने नहीं देतीं। बन्दर ने बेरों के लोभ वश तंग मुख के घड़े में हाथ डाल कर मुट्ठी बाँध ली न मुट्ठी खुलती है और न वह घड़े को छोड़ता है। दीन, दुखी व्याकुल और विचलित होता है।

यह ग्रंथी कैसे खुले? यह दीन दशा देखकर सन्तों को दया आई। प्रगट हुए। जीवों को चितना शुरू किया। यह घड़ा तुम्हारा घट है अथवा मन है। जिसमें कामना रूपी बेर भरे हुए हैं। तुमने अपनी मुट्ठी रूपी खुदी, अहंकार, अहंभाव से उसको पकड़ रक्खा है। मुट्ठी को तनिक ढीली करदो एक २ बेर को लेकर खाते चलो और साथ २ घड़े से धीरे २ मुट्ठी निकाल लिया करो। कुछ दिनों ऐसा साधन करो। जब मुट्ठी निकलने लगी। तो तुमको कुछ सुख भी मिला। इधर से किसी अंश में तृप्ति भी होती चली और उधर अपने निज रूप और ज्ञात का भी अनुभव होने लगा। ज्ञान ध्यान की कथाओं का प्रवाह चल निकला। कुछ समय के बाद जब बेर घड़ा और साथ ही अपने रूप का साक्षात्कार होने लगा तो इसके सिलसिले में वासनाओं का जाल भी कटता गया। और जब यह जाती रही। प्रथम चाहे वह अपने निज रूप में समाई और फिर वह अलोप या गुम हो गई। अब क्या है? हम ही हम रह गये। खुदी बे खुदी में तबदील होगई। अपने अहंभाव का लोप होकर निज रूप का भाव हो गया जो हमारी दशा आदि में थी, अथवा जो हम स्वयं आदि में थे और यह

ही निर्वाण है। कामनाओं के बन्धन से मुक्ति पाना निर्वाण है। इच्छा बन्धन है। और इच्छाओं से मुक्ति पाना मोक्ष है। गुरु सबका कल्याण करें और अपने चरणों का आसरा प्रदान करें।

राधास्वामी। सेवकों में सबसे अधम–

नन्दू भाई

दान और सन्यास की मीमांसा

संत विनोबा जी के उद्गार संक्षेप में (भूदान यज्ञ से)

महानारायणोपनिषद के अन्तिम अंश में अतिथि सेवा, तप, दान आदि बहुत से विषय आये हैं। आखिर में यह ही कहा है कि उन सब में न्यास अर्थात् श्रेष्ठ चीज है।

आज हम दान और न्यास के विषय में ही समझायेंगे। भूदान यज्ञ का पहला क़दम दान है और अन्तिम है न्यास। दान का अर्थ है देना। अपने पास जो चीज़ है उसका एक भाग समाज को देना। दान में यह कल्पना है कि उसमें किसी पर उपकार करने की भावना नहीं होती बल्कि दृष्टि होती है कि समाज के हम ऋणी हैं। जो २ वस्तु समाज द्वारा हमको प्राप्त होती हैं वह उसकी देन हैं। और हमको उसके भोगने का अधिकार जब ही हो सकता है तब हम अपनी पूंजी का कुछ अंश समाज को देते रहें। यदि हम ऐसा नहीं करते हैं तो हम चोरी करते हैं। परन्तु चोरी करना मानवता के विरुद्ध है और इसलिये वह पाप है। पर यह बात हमारे ध्यान में नहीं आई कि संग्रह करना भी पाप है चोरी और संग्रह एक ही वस्तु के दो रूप हैं। आज समाज ने संग्रह पर प्रहार नहीं किया बल्कि चोरी को गुनाह समझा। आज यह उल्टी बात है जो संग्रह को पवित्र समझा जाता है। वास्तव में चोरी का मूल संग्रह में है और यह

ही चोरी को जन्म देता है। इसलिये चोरी पाप है तो संग्रह पुण्य नहीं हो सकता। हर मनुष्य से व्यवहार में स्वाभाविक ही संग्रह होता है। इसलिये उस पाप से निवृत्त होने की योजना यह है कि उसका कुछ अंश समाज को अर्पण किया जाय। उस हालत में दान का फल आपको प्राप्त होगा।

भोग सतत तो दान भी सतत अथवा नित्य है। यानी किसी खास मौक़े पर करना धर्म नहीं है बल्कि कर्तव्य पालन है। लोग कहते हैं कि आप हमसे अपनी भूमि का छटा भाग मांगते हैं तो क्या उससे हमारा छुटकारा हो जायगा। हम कहते हैं कि यह धर्म वृति नहीं है। आप विवाह करते हैं तो बँध जाते हैं या छूटते हैं? जैसे आप उसमें बँध जाने में कल्याण समझते हैं वैसे ही धर्म कार्य में बँध जाना कल्याण है। हम यह तो नहीं कहते हैं कि एक दफे ज़रा ज़रा सा खालेंगे तो फिर खाने से छुटकारा होगा। आहार तो देह के लिये लाभदायी है। जब तक देह है तब तक कुछ न कुछ आहार देना अच्छा है। हम यह तो नहीं कहते कि गंगा एक बार नहा लिये तो फिर स्नान से छूट गये। शरीर रोज़ गंदा होता है हम भी रोज़ उसे धोते हैं। न वह हार खाता है न हम ही हार मानते हैं। जब हम मर जाते हैं तो शरीर को धो नहीं सकते उस समय हिन्दू लोग समाज हमारे शव को धोता है तब जाकर हमारा नहाने का व्रत खंडित होता है। हम रोज़ रात को सोते हैं। हमें कभी अरुचि पैदा नहीं होती। शरीर को रोज़ थकान होती है। इस कारण रोज़ ही शरीर को आनन्द देते हैं। जब स्वाभाविक कर्म खाना, पीना, स्नान आदि नित्य कर्म हैं, देह के साथ हैं, तो फिर दान की भी निरन्तर चलने की आवश्यकता है।

दान देना उपकार नहीं ऋण मुक्ति है। आज बाबा

आपके यहाँ ठहरा और कुछ विश्व कल्याणकारी बातें कहीं आप समझते हैं कि बाबा ने बड़ा उपकार किया। पर जो हिसाब बाबा के मन में है वह है आप लोगों की भावुकता। बाबा के सब सुख और आनन्द की सामग्री जुटाना आदि २। यह तो एक दिन का कार्य है। यदि बचपन के हिसाब का लेखा किया जाय तो बाबा आपके इस एक दिन के उपकार का भी भली भांति बदला देने में असमर्थ है। हम तो यह समझते हैं कि उपकार कर्ता हम नहीं बल्कि समाज है। दान करने वाला इस भावना से दान करे। आज हम आपसे ज़मीन मांगते हैं कल उसकी लागत के लिये बैल, बीज इत्यादि भी मांगेंगे और आप श्रद्धा पूर्वक देते भी चलोगे और ज़रूर दोगे। फिर हमारा आग्रह होगा कि शिक्षा, बीमारी, विवाह आदि जो भूमिधरों के सार्वजनिक कार्य हैं वे सब गाँव वाले मिलकर करेंगे। इसी प्रकार जैसे विवाह करने के बाद आपका संसार शुरू होता है और बढ़ता ही जाता है वैसे ही भूमि दान के बाद आपका कार्य शुरू होगा और बढ़ता ही जायगा। इसी का नाम है दान।

न्यास नारायणाश्रित जीवन में अपने पास संग्रह का पूरा विसर्जन है। यानी मैं पास कुछ रक्खूंगा ही नहीं। समाज को दे दूंगा। फिर समाज जो कुछ मुझे देगा वह मैं लूंगा। पूरा नारायणाश्रित बनूंगा। भूदान यज्ञ का अन्तिम क़दम यह ही है। जिस प्रकार एक रेखा में दो बिन्दु होते हैं। उनमें पहला बिन्दु है दान और आखिर का बिन्दु है न्यास। दान से लेकर न्यास तक धर्म का पंथ है। हम इसी पथ पर निरंतर बढ़ते २ चले जायेंगे और अंत में विसर्जन करेंगे। जैसे नदी पेड़ों को पोषण देते २ चली जाती हैं। वैसे ही धार्मिक मनुष्य दान देते २ चला जाता है। नदी का ध्येय वृक्षों को पानी देना ही नहीं है। उसका उद्देश्य

है समुद्र में लीन होना। उसी प्रकार मानव धर्म हैं न्यास या त्याग अथवा समाज सेवा में लीन होना । बाबा की वाणी में क्या आकर्षण है ? वह कोई वक्ता नहीं हैं। उसकी वाणी में यही आकर्षण हैं कि उसने अपना सब कुछ देश को अर्पण किया है। फिर आपके पास आकर दान मांगता है । वह बात आपको जँचती है। इसी प्रकार न्यास या त्याग करके देश में उद्धार करने वाले लोग होने चाहिये। उन्हीं के हाथ में नेतृत्व होना चाहिये। तो समाज में दान और सन्यास परम्परा नित्य और निरंतर चले। यदि नेता गण कोरे दान शील भी रहे तो लोग भोग शील ही रहेंगे। लेकिन अगर समाज के नेता सर्वस्व पद त्यागी हुये तो लोग कम से कम दान शील तो बनेंगे ही इसलिये सर्वश्रेष्ठ सेवा सन्यास ही हैं।

सन्यास का अर्थ समाज का परित्याग नहीं। लोगों ने ग़लत समझा है। वास्तव में सन्यास का अर्थ है समाज मय हो जाना, अभय होना न मुझे किसी का भय है न किसी को मुझ से भय है। मेरा व्यक्तिगत अहंकार कुछ नहीं। मैं आपके लिये हूँ। आप मुझ से जो चाहें सेवा लें। इसी का नाम सन्यास है। बसन्त ऋतु के समान सन्यासी लोक हित करते रहते हैं । वह चाहते कुछ नहीं। आज सन्यासी का अर्थ है समाज की भिक्षा तो करना पर सेवा कुछ न करना। कभी २ लोगों को बोध देना और अपनी सेवा औरों से लेना। यह एक सन्यासी का लक्षण नहीं है। सन्यास माने केवल सेवा मय जीवन जिसमें देह की आसक्ति,मन में अहंकार, स्वार्थ, लोभ या कामना न हो। हम में से हर एक का जीवन ऐसा हो। यही हमारा अन्तिम ध्येय होना चाहिये।

दान और सन्यास में भेद है। अपना सर्वस्व का परित्याग सन्यास और कुछ अंश में भोग करते हुए उसका एक भाग

देना दान है। परन्तु यह दोनों केवल व्यक्तिगत मूल्य नहीं हैं बल्कि सामाजिक मूल्य भी हैं। व्यक्तिगत में शक्ति नहीं आयेगी। सामाजिक दृष्टि से दान का अर्थ है कि धन सारे समाज में विस्तृत कर दिया जाय। जैसे हाथ ने लड्डू उठाया। यदि लड्डू को वह ही रक्खे रहे तो खाने का आनन्द नहीं मिलेगा हाथ यदि परोपकारी बनकर मुंह में डालता है तभी पेट में पहुंच कर और पच कर सारे शरीर को बलवान बना देता है। अर्थात् आज हमारे पास कोई चीज़ आई तो उसका थोड़ा सा अंश सेवन करके बाक़ी को उसी क्षण और उसी दिन समाज को लौटा देने की प्रक्रिया सामाजिक दान प्रक्रिया कहलाती है। यह ही दान का सामाजिक मूल्य है।

न्यास का सामाजिक मूल्य है सब जगह विकेन्द्रित उत्पादन। किसी एक जगह उत्पादन होता हो तो वह बात सन्यास के विरुद्ध है। समाज में कहीं भी केन्द्रित उत्पादन न हो तो इसको सामाजिक न्यास योजना कहा जायगा। यह सब विद्याओं में श्रेष्ठ है। सब तपस्याओं में श्रेष्ठ है। दान योजना और न्यास योजना का अर्थ है उत्पादन होते ही फ़ौरन उसे दूसरी जगह पहुंचा देना। यह दान योजना है। और सब में उसका विभाजन न्यास योजना है। मिसाल के तौर पर मिल के कपड़े की जगह ग्राम उद्योग, करघा चरखा आदि की व्यवस्था यानी ज़रूरत के लायक़ कपड़े का ग्राम २ उत्पादन।

—अमलापुरम (आंध्र)
२०-११-५५।

व्यवस्थापक का नम्र निवेदन

(१) 'शिव मासिक अभी बाल्यावस्था में है। हर प्रेमी पाठक व जिज्ञासु जन की ओर अपनी आशा भरी दया भाव की टकटकी लगा रहा है जिन २ ने उसकी ऐसी लालसा की दृष्टि को देखकर सहायतार्थ स्वयं ग्राहक बने हैं और अन्य सज्जनों को भी बनाकर अपनी सहानुभूति का परिचय दिया है हम उनके हृदय से कृतज्ञ हैं और कामना करते हैं कि इस बालक पर अपनी दया दृष्टि आगे भी बनाये रक्खेंगे। इधर व्यवस्थापक भी खुद लल्ला भय्या बालक ही है जो सबकी दया दृष्टि का अभिलाषी है। जिमि बालक सुन तोतरि बाता। होंय मुदित मन पितु अरु माता

गुसांई जी के इस वाक्य के समान जिन २ सज्जनों ने अभी अपना लाड़ प्यार नहीं जताया है वह कृपया अपना वार्षिक दान या चंदा, जैसा भी वह विचार करें, M. O. द्वारा भेजकर अपनी कृपा दृष्टि बना रक्खें, तो काम भली भांति चले। इन बालकों ने तो अपनी गोद का सहारा ले ही लिया है। गोद में खेलते ही रहेंगे।

(२) अपने प्रेमी पाठकों के स्नेह को देखकर कुछ सज्जनों ने आगामी अङ्क में "शब्द सार पहला भाग" छपवाने का आग्रह ही नहीं किया है बल्कि (१) श्री डाक्टर लक्ष्मण राव जी जुमेरात बाज़ार निज़ामाबाद दखन व (२) मास्टर गजराज जी महेशकर मास्टर हाई स्कूल महबूब नगर दखन ने ५०) रु० का मनीआर्डर भेजकर अपनी सहानुभूति का परिचय दिया है। शिव परिवार उनका हृदय से कृतज्ञ है और उनको भले की कामना करता है। पुस्तक की भूमिका में भी उन महाशयों का नाम दे दिया जायगा जिससे वे सब पाठक जनों के भी आशीर्वाद के पात्र बनें। कुछ सज्जनों ने राधास्वामी जोग अथवा राधा मत प्रकाश एक बड़ी

पोथी ५०० सफे की, प्रकाशन के लिये दान देने और छपवाने का भी प्रस्ताव रक्खा है। यह दोनों बालक इस प्रकार प्रेमी जनों के लाड़ प्यार में युवक बन जायेंगे और बड़ी २ पुस्तकें आगामी वर्ष में भेंट कर सकेंगे।

(३) संत विनोबा जी महाराज की दान व सन्यास की मीमांसा को पढ़कर व अपने प्रेमी पाठकों की सहानुभूति को देख यह लल्ला भइया भी प्रेरिक हुआ है कि वह अपने दवा बांटने के संस्कार को जो बालकपन से ही रहा है उसके कारण कुछ Stock. पिछले सालों का बाबा रत्नागिरी के महा शक्ति फौलाद का संग्रहीत हुआ शेष है। जिसके वितरण करने की लालसा है। यह मौसम जाड़े का है। इस प्रकार के स्वास्थ्य वर्धक व शक्ति व बल देने वाले पदार्थों का सेवन करना इसी ऋतु में अधिक लाभ दायक सिद्ध होता है। "काया राखे धर्म है और काया जारे पाप" इसको दृष्टि में रख कर यह उपहार भेंट कर रहा हूँ। आगामी वर्ष में जो खरीदार बनें वह चाहें तो इस सुअवसर से पूरा कोर्स ४० दिन का प्राप्त करके लाभ उठा सकते हैं। केवल डाक खर्च के लिये अपने लिफ़ाफे में एक दूसरा लिफ़ाफ़ा व रजिस्टरी खर्च को छः आने के टिकट भेज दें जिससे दवा न मिलने का संदेह दूर हो। शर्त केवल यह है कि 'शिव' के आगामी वर्ष का चंदा उनको पेशगी भेज देना होगा। इन दवाओं के बारे में जो हमने गत वर्षों में नोटिस छपवाये थे एक २ अगले नं० ११ के साथ सेवा में भेज दिया जायगा जिससे पूरी जानकारी हो सके।

भवदीय—

लल्ला भइया

"मैनेजर शिव"

पो० दयाल नगर (अलीगढ़)

تیزہ ماشہ ان کو گھي گوار کے رس میں ۲۴ گھنٹہ کھرل کریں پھر ٹکیہ بنائیں اور ایک مٹي کي ھانڈی میں بند کرکے ۵ ٹار کنڈوں میں پھونک لیں۔
(۲) ایک تولہ ھرتال ورقي مصفا تیزہ ماشہ بھیم سیني کافور کو رس گھي گوار میں پہلے کي طرح ۲۴ گھنٹہ گھوٹ کر آگ دیں (۳) ایک تولہ گندھک املہ سار مصفا تیزہ ماشہ بھیم سیني کافور میں پہلي طرح آگ دیں (۴) پارہ مصفا ۱ تولہ اور تیزہ ماشہ بھیم سیني کافور میں پہلي طرح سے آگ دیں اسي طرح سے متواتر ۲۰ آگ دیں اور ۲۴ گھنٹہ تک گھوٹیں۔ بعد میں ایک مٹي کے برتن میں بند کرکے چالیس دن کیلے کي جڑ میں گاڑھ دیں اور نکالکر کھرل کرکے استعمال میں لائیں بس۔ "مہاشکتي دانا" دوا تیار ھے۔

دوا بانٹنے کا شوق مجھے تقریباً ۳۰ سال سے ھے۔ وقتاً فوقتاً جو نسخہ مجھکو گرو مہاراج سے ملتے رھے ھیں انکو تیار کرکے اپنے قریب و جوار کے دیہات میں مفت بانٹتا ھوں۔ میری چند دوائیں بہت آزمودہ اور زود اثر ھیں جو استعمال کرتے ھي اپنا حکم اٹھاتي ھیں۔ ضرورت مند اصحاب نمایش میں بھي لے سکتے ھیں۔ اگر کوئي صاحب خرید کرنا چاھیں تو وہ ملاکر طے کر سکتے ھیں۔

(۱) بجرا ابرک — ۳۰۰ آگ کي طاقت ویرج پرآني کھانسي و بخار و نمونیا وغیرہ میں مختلف طریق پر استعمال کرنے سے اپنا جادو اثر دکھاتي ھے۔

(۲) نیتر رکشک سرمہ — آنکھوں کي بیناي بڑھانے میں لامثال ھے۔ روزانہ استعمال سے چند دنوں میں ھي چشمہ کي ضرورت کم ھونے لگتي ھے۔

(۳) دنت منجن — دانتوں کے ھر مرض پایریہ وغیرہ کو دور کرکے یہ دانتوں

کو چمکیلا بناتا ہے -
(۴) گندھک وٹی — بدحضمی - پیٹ کادرد - اپھرا - بھوک نہ لگنا -
کھٹی ڈکاریں آنا ان سبکو دور کرکے خوب کھانا ھضم کرتی ہے اور قوت
ھاضمہ کو بڑھاتی ہے -
(۵) آنو ناشک چورن — کیسی ہی پرانی آنو اسکے استعمال سے جلد دورھوجاتی ہے -
(۶) دمہ ناشک — کیسا ہی پورانہ دمہ و کھانسی ہو جلد آرام کرتا ہے -
(۷) ادبھت وٹی — ہر قسم کے جسمانی درد - جاڑہ بخار - کھانسی -
مستورات کی پرسوت کی بیماری غرضیکہ بات - کف کے جملہ مرضوں کو دور کرنے میں
جادو اثر ہے دودھ کے ساتھ رات کو ۱ گولی کھانا دودھ کو ھضم کر دیتا ہے -
(۸) آرام تیل — ہر قسم کے جسمانی دردوں لقوہ - فالج - گٹھیہ - وغیرہ
کے دور کرنے میں بجلی کی تاثیر رکھتا ہے -
(۹) کماری آصف — یہ بھی جسم و پیٹ کے امراض کو دور کرکے قوت
ھاضمہ کو بڑھاتا ہے اور جسم کو طاقتور بناتا ہے -
(۱۰) امرت گھی — چالیس سال سے زیادہ عمر والوں کے لئے اسکا استعمال
پاو بھر گھی و پانچ سیر دودھ آسانی سے ھضم کر سکتا ہے -
گرو مہاراج کا ارشاد ہوا "مہاشکتی" دوا جسکی تعریف اوپر لکھی جا
چکی ہے بناکر تیار کرکے تاکہ ہر کس و ناکس اوس کے فائدہ سے مستفید و
مستفیض ہوں - چنانچہ میں نے اوس کو تیار کرلیا - جو صاحب چاہیں -
آزمائیں اور بس —

نیازمند
منیجر دیال فارسی
پوسٹ دیال نگر ضلع علیگڈہ (محکمہ زراعت نمائش)

K. P. Job Printing Press, Aligarh.

वेदा विभिन्नाः स्मृतयो विभिन्ना नासौ मुनिर्यस्य वचः प्रामाणम ।
धर्मस्य तत्वं निहितं गुहायां महा जनः येन गतः स्वः पन्था ।

शिव

वर्ष १ | १९५६ जनवरी | तरंग ११

❀ प्रार्थना ❀

शब्द

१. दया दृष्टि से खोल दे आंख मेरी ।
रहे बासना मन में भक्ती की तेरी ॥ १ ॥

२. तेरी आस है और तेरा है सहारा ।
शरन दे के कर सिन्ध से भव पारा ॥ २ ॥

३. गले में पड़ी काल माया की फांसी ।
दया से कटे मोह बन्धन की गांसी ॥ ३ ॥

४. करूँ तन से और मन से मैं काम तेरा ।
रहे रात दिन होटों पर नाम तेरा ॥ ४ ॥

५. सदा सर्वदा मन में हो ध्यान तेरा ।
तेरा ही हो अनुमान और ज्ञान तेरा ॥ ५ ॥

६. जपूँ राधास्वामी भजूँ राधास्वामी ।
पढ़ूँ राधास्वामी गुनूँ राधास्वामी ॥ ६ ॥

भूमिका

सन् १९०१ ई० और सितम्बर का महीना था। उस समय मैं आर्य्य गज़ट लाहौर का सम्पादक था जिसके अधिष्ठाता सुप्रसिद्ध देश भक्त लाला लाजपत राय जी थे। एक दिन वह मेरे दफ़्तर में आये और कहने लगे, "आपको हिन्दू शब्द बहुत प्यारा है। अपने लेख में आर्य शब्द क्यों नहीं लिखा करते? आगे ऐसा न हो। 'हिन्दू' घृणित नाम है जो अन्य जाति वालों ने भारत निवासियों को दिया है।" लाला जी को मेरी इस बात पर कुछ क्रोध भी आ गया था। मैंने उनसे कहा, "मैं सब कुछ जानता हूँ और जान बूझ कर ऐसा लिखता हूँ और हिन्दू शब्द ही आगे भी मेरी लेखनी से निकला करेगा। आप चाहें किसी और के हाथ 'आर्य्य गज़ट' को सौंप दें।" वह यह सुन कर चकित हुये, पूछा, "ऐसा लिखने से आपका प्रयोजन क्या है?" मैं ने उत्तर दिया, "आर्य्य नाम आर्य्य जाति का था। पहिले सारे मतावलम्बी और जाति पाँत वाले अपने आपको आर्य्य कहते थे। यहां तक कि जैनी और बौद्ध आदि भी अपने धर्म्म को जैन धर्म्म अथवा बुद्ध धर्म्म नहीं कहते थे किन्तु अपने धर्म्म को सदैव आर्य्य धर्म्म कहा करते थे। जब से आर्य्य समाज की मण्डली बनी आर्य्य समाजी हिन्दू नाम से चिढ़ने और घृणा करने लगे। उनके देखा देखी सिख (ख़ालसा पन्थ वाले) भी हिन्दू कहलाने से कतराने लगे। ब्रह्मसमाजियों की भी यही दशा है। इससे हिन्दू जाति छिन्न भिन्न हो गई और जाति मर्यादा को धक्का पहुँचा। अब आर्य्य समाज रह गया। मैं सबको चाहे वह कोई क्यों न हो एक हिन्दू जाति में गुथा हुआ देखना चाहता हूँ। सम्प्रदाय भेद चाहे रहे, इससे हानि नहीं पहुँचती परन्तु सब के लिये एक प्रचलित नाम रहे और वह उसके अभिमानी रहेंगे।"

लाला जी सुनकर चुप रह गये। मैंने फिर कहा, "आज आप मुझसे लड़ रहे हैं और हिन्दू की जगह आर्य्य लिखना चाहते हैं। दस वर्ष के पीछे आप आर्य्य की जगह हिन्दू कहते फिरेंगे।" वह फिर कुछ न बोले। बड़ी समझ बूझ के मनुष्य थे। मेरा अभिप्राय समझ गये दूसरे वर्ष उनको इँगलैण्ड जाना पड़ा। लौटने पर वह भी मेरे सदृश अपनी जाति के लिये लेक्चरों में हिन्दू ही शब्द का प्रचार करने लगे। मेरी भविष्यवाणी दस वर्ष के लिये थी परन्तु वह तीन ही वर्ष के भीतर पूरी हो गई।

मुझमें सम्प्रदायी या पन्थाई पक्षपात नहीं है। मैं सब को प्रेम की दृष्टि से अपने जैसा देखता हूँ। जहाँ मैंने हिन्दूओं के वीर पुरुषों और विदुषी अहिलाओं के चरित्र लिखे साथ ही जैनी और बौद्धों को भी अपने से पृथक नहीं समझा। उनके भी चरित्र बहुतायत के साथ मेरी रची हुई पुस्तकों में मिलेंगे।

इस ग्रन्थ में कई विदुषी जैन महिलाओं के वृत्तान्त मिलेंगे जिन्होंने इस भारत के शोभा धाम बनाने में कम योग्यता नहीं प्रगट की थी। उनके इतिहास मनोरञ्जन और प्रभावशाली हैं और भक्ति प्रेम, उत्साह के भाव को उभारते हैं। आशा है जो लोग इन्हें पढ़ेंगे वह मुझसे सहमत हुये बिना न रहेंगे।

गुरु आशीर्वाद दें कि हम सब सम्प्रदाय भेद को भूलकर स्वजाति प्रेम की ओर ध्यान दें, मिल जुल कर परस्पर प्रीति का पालन करें और भारत की सेवा में भली भांति सङ्गठन के साथ भाग लें।

—शिव

आदर्श भारती महिलायें

ऋषि दत्ता

(१)

मध्य देश में रथमर्दन नाम एक नगर था। वहाँ का राजा हेमरथ था और उसका लड़का कनकरथ कहलाता था। रानी का नाम स्वयशस था। यह लड़का बड़ा ही शूर, वीर, सुन्दर और सुशील था। मध्य देश इस के शुभ गुणों से वैसा ही सुशोभित था जैसे कमल का खिला हुआ फूल तालाब की शोभा को बढ़ाता है। उस देश के नवयुवक उसको अपना आदर्श समझते थे। मसल है "जैसा राजा वैसी ही प्रजा" परन्तु इस राजकुमार की दशा देखकर कहना चाहिये कि "जैसा राजा का लड़का वैसी ही प्रजा की सन्तान।" राजा के सद्भाव का प्रभाव प्रजा पर पड़ता है। राजा के लड़के जैसे भलेया बुरेहोंगे वैसी ही प्रजाकी भी सन्तान होगी।

उस समय कावेरी नदी के किनारे सूरसुन्दर राजा राज करता था। उसका राज्य कावेरी कहला था! उसकी रानी का नाम वासूला था। उनकी लड़की रुक्मिणी बड़ी ही रूपवती थी जब वह सयानी हुई माँ बाप उत्तम वर की खोज करने लगे उनको पता लगा किहेमरथ का लड़का कनक रथ उसके लिये योग्य वर है। सूर सुन्दर ने अपने पुरोहित को भेजा कि मध्य देश के राजा से बात चीत करके उसके राज कुमार को बुला लाये जिससे उसके साथ राज-कुमारी का व्याह कर दिया जाये।

पुरोहित वहाँ गया। हेमरथ भी लड़के के लिये योग्य कन्या की खोज में था। राजकुमार बहुत से आदमियों के साथ बाप की आज्ञा पाकर कावेरी की ओर चल निकला।

(२)

अभी वह राह ही में थे कि एक मनुष्य उनको मिला। उसने कहा, "मेरा राजकुमार अरिदमन जंगल में शिकार खेलने आया है। वह तुम्हारे साथ लड़ना चाहता है।" ऐसा अनुमान किया

जाता है कि अरिदमन को रुक्मिणी के साथ विवाह करने की इच्छा थी और वह कनक रथ को जो राह का काँटा बन रहा था दूर करना चाहता था। कनकरथ व्यर्थ मार धाड़ करना नहीं चाहता था। फिर भी वह क्षत्री था। कैसे सम्भव था कि कोई शत्रु उसको लड़ने के लिये ललकारे और वह उसका सामना न करे! क्षत्री का धर्म्म महा कठिन है। कभी कभी यह लड़ना भिड़ना नहीं चाहते परन्तु शत्रु से सामना करने में हिचकिचाना या लड़ाई के मैदान से भाग जाना भी तो अधर्म्म है। कोई सच्चा क्षत्री धर्म्म से पतित होना कदापि नहीं चाहता। अन्त में लाड़ाई हुई। अरिदमन हार कर जंगल में भाग गया और यती का जीवन व्यतीत करने लगा। यह नहीं पता चलता कि उसके तपस्या का फल क्या हुआ!

(३)

कनक रथ की सेना आगे बढ़ी। एक महा भयानक मैदान राह में आया जिसमें कहीं पानी नाम मात्र के लिये नहीं था। मनुष्य और पशु प्यास से तड़पने लगे राजकुमार ने कई सवारों को पानी की खोज में इधर उधर भेजा और समझा दिया कि "जहाँ कहीं वृक्ष और हरियाली देखो समझ लो कि वहाँ पानी अवश्य होगा।' यह जाकर देर तक ऐसी जगह ढूँढ़ते रहे और कई घंटे के पीछे लौटे। राजकुमार ने पूछा, "तुम लोगों ने देर क्यों की?" उत्तर मिला, "यहाँ से थोड़ी दूर पर एक झील है जिसके किनारे खजूर और केले के वृक्ष बहुतायत से लगे हुये हैं। वहाँ हमको एक बहुत ही सुन्दर लड़की दिखलाई दी और फिर दम के दम में ला पता हो गई। उसे देखकर हमें आश्चर्य्य हुआ। वह इस भयानक बन में वैसी ही दिखाई दी जैसेसाँप के मुँह में मणि या काली घटाओं में बिजली। पता नहीं वह कौन है और कौन नहीं है! हमारा बिचार था किआप उसको देखकर प्रसन्न होंगे इसलिये उसकी खोज में देर हुई।"

राजकुमार यह सुन कर झील की ओर चल खड़ा हुआ। सेना भी लड़ाई के बाजे बजाती हुई चली। सब झील के किनारे

पहुँच गये। संयोग वश या भाग्य वश वह लड़की फिर वहां दिखाई दी। राजकुमार उसको देखकर सन्नाटे में आ गया और मन में कहने लगा कि "यह इन्द्र की अप्सरा है या नाग कन्या है! ऐसी रूपवती स्त्री मैंने आज तक नहीं देखी। कोयले की खान में यह हीरा कैसा! छिचले गढ़े के पानी में ऐसा चमकदार और बहुमूल्य मोती कहाँ से आ गया!" वह इसी सोच विचार में था कि वह लड़की फिर आँखों से ओझल होगई। राजकुमार की आज्ञा पाकर लोग झील के किनारे और आस पास उसे ढूँढ़ने लगे।

थोड़ी ही दूर पर एक फूस का झोंपड़ा दिखलाई दिया। उनको विश्वास हो गया कि "हो न हो वह लड़की इसी में रहती होगी।" आगे बढ़े। झोंपड़े के निकट ऋषभ देव की मूर्ति खड़ी थी। सब ने समझ लिया कि यहाँ कोई जैनी यती रहता है। राजकुमार भी जैनी था। उसने मूर्ति की पूजा की और स्तुति गाकर कहा, "आज मेरा भाग्य उदय हुआ। यात्रा में तीर्थङ्कर का दर्शन पाना शुभ है।" जब वह उसकी पूजा कर रहा था वहाँ उसी समय एक जटा धारी यती आया। उसके साथ टोकरी में फूल लिये हुए वह लड़की भी थी। राजकुमार ने लड़की को और लड़की ने राजकुमार को देखा दोनों के हृदय में एक दूसरे का प्रेम उत्पन्न हुआ। राजकुमार की तरह लड़की भी सोचने लगी "कहीं यह इन्द्र देवता तो नहीं हैं जिसकी कथा सद् शास्त्रों में आई है और क्या वह यहां ईश्वर की पूजा के लिये आया हुआ है!"

जब वह यती ऋषि पूजा कर चुका आप ही आप राजकुमार से कहने लगा, "यहाँ कोई भी नहीं आता। तुमको तुम्हारा सौभाग्य यहां लाया है। मेरे झोंपड़े में आकर विश्राम करो। अपनी सेना को भी आज्ञा दो कि झील के किनारे किनारे खेमा डाल दे। मैं साधु हूँ। मेरे साथ इस लड़की के अतिरिक्त और कोई नहीं है

मुझ से जहाँ तक हो सकेगी तुम्हारी सेवा करूँगा। साधू के घर में फल फूल, जड़ी बूटी और कन्द मूल के अतिरिक्त क्या मिलेगा कन्द मूल ही हमारा आहार है। हम इनको खाकर और झील का पानी पीकर यहाँ रहते हैं और ईश्वर की भक्ति करते हैं।"

राजकुमार ने हाथ बाँध कर उसको नमस्कार किया और झोंपड़े में आया।

ऋषि ने पूछा, "तुम कौन हो? और कहाँ से आये हो? क्यों आये हो? तुम्हारे साथ इतनी भीड़ भाड़ क्यों है? क्योंकि इस स्थान का पता केवल इने गिने साधुओं को है जो यहाँ रह गये हैं। दूसरे इसको नहीं जानते।"

राजकुमार ने अपना वृत्तान्त ज्यों का त्यों उसको सुना दिया। ऋषि बोला, "मैं तुम्हारे बाप दादा को भली भांति जानता हूं। तुम्हारे यहां आने से मैं बहुत ही प्रसन्न हूँ।"

फिर राजकुमार ने पूछा, "मैंने अपनी कथा कह सुनाई। यदि कोई हर्ज न हो तो आप भी बताइये कि आप कौन हैं? यह मंदिर यहां किसने बनाया? ऋषभदेव की यह बड़ी और उत्तम मूर्ति यहाँ कैसे आई? यह लड़की कौन है? और इस सुनसान जगह में इसका क्या काम है? इसे तो किसी राज महल में रहना चाहिये था।"

ऋषि हँसा, "मेरी कथा बहुत बड़ी है। तुम विश्राम करलो, थकावट दूर हो जाये फिर मैं अपनी राम कहानी तुम को सुना दूँगा।"

—❀ (४) ❀—

साधू ने राजकुमार को भोजन करने के लिये कहा। लड़की ने कन्द मूल आग में भूने। उसके छिलके दूर किये और कमल के पत्तों पर जड़ी, फल, फूल, साग और भाजी सजा कर ले आई जिसमें नमक तक नहीं था। राजकुमार ने प्रेम के साथ भोजन

किया। जब सब खा पी चुके ऋषि ने कहा, 'यदि अब तुम्हारी इच्छा हो तो मैं अपनी कथा तुमको सुना दूँ।"

कनक रथ के कहा, "आप की बड़ी ही कृपा होगी। मैं स्वयं आप से प्रार्थना करने वाला था।"

ऋषि बोला:—भारतवर्ष में अमरावती नाम एक नगर है। वहाँ हरिसेन राजा अपनी रानी प्रिय दर्शनी के साथ राज करता था। उसके एक लड़का था जिसका नाम जिनसेन था। एक दिन कोई मनुष्य एक घोड़ा लाया जिसको उल्टी शिक्षा दी गई थी—अर्थात् वह एड़ लगाने पर चुप चाप खड़ा हो जाता था और लगाम खींचने पर सरपट दौड़ता था। घोड़ा देखने में बहुत ही अच्छा था। राजा ने उसको पसन्द किया और सवार हो गया। जब उसने उसके रोकने के लिये लगाम खींची घोड़ा उछल पड़ा और हवा से बातें करता हुआ एक जगह ले आया जहाँ कोई साधू रहता था। साधू ने उसे देख कर प्रसन्नता प्रकट की और बोला "बेटे! मेरी मृत्यु निकट है। मुझको साँप के बिष उतारने का मन्त्र आता है। मैं चाहता था कि मरने से पहिले किसी को बता जाऊँ जिससे यह विद्या गुप्त न होने पाये। अब तुझको बताता हूँ। देखना! जिसका इलाज करना उससे इसके बदले में कुछ भी न लेना।" साधू ने राजा को वह मन्त्र सिखाया और घोड़े की उल्टी शिक्षा का भेद भी बतलाया। मन्त्र सिखाने के पीछे उसने राजा को बिदा किया और घोड़ा फिर उसकी राजधानी में पहुँचा गया।

राजा के आने पर उसकी प्रजा ने उत्सव मनाया और वह फिर पहिले की तरह राज काज का काम करने लगा।

एक दिन उसके पास एक सवार आया। उसने कहा, "महाराज! मंगलावती नगर में राजा प्रिय दर्शन की रानी बिद्युत् प्रभा की लड़की प्रीतिमती को साँप ने डस लिया है। आप चल कर उसका इलाज कीजिये। राजा ने प्रार्थना स्वीकार करली। वह

साँडनी की सवारी पर वहाँ आया। उसके इलाज से राजकुमारी अच्छी हो गई। प्रिय दर्शन ने कहा, "तुम ने इस लड़की की जान बचाई है इस लिये मैं तुम्हें इसी को भेंट देता हूँ।" हरिसेन ने उत्तर दिया, "इलाज के बदले में मैं कुछ भी नहीं ले सकता। यह गुरू की आज्ञा है। प्रिय दर्शन हँसा, "फ़ीस रुपये या जवाहिरात के रूप में दी जाती किन्तु यह लड़की उसके बदले में नहीं दी जाती किन्तु यह तुम्हारे योग्य है।" हरिसेन ने विवाह कर लिया और प्रीतिमती के साथ राजमहल में लौट आया। कुछ दिनों राज करता रहा। उसका लड़का सयाना था। राजा ने उसी को राज सौंप दिया और आप विश्व भूति यती से दीक्षा पाकर तप करने लगा। राजा और रानी दोनों ही तप करते थे परन्तु पाँच महीने पीछे पता लगा कि रानी गर्भवती है। यती यह दशा देखकर बहुत बिगड़ा। राजा ने रानी से पूछा, "यह क्या बात है?" रानी बोली, "गर्भ पहिले ही से था तुम को इस लिये नहीं बताया कि तुम मुझ को अपने साथ बन में न लाओगे और मैं तप के फल को प्राप्त न कर सकूँगी।" तपस्वी तो जगह छोड़ कर चले गये। राजा और रानी दोनों दुखी थे परन्तु करते क्या! वहां अकेले रहने लगे। नौ महीने पीछे रानी ही के रूप की एक लड़की उत्पन्न हुई। ऋषि के झोंपड़े में जन्म होने के कारण उसका नाम ऋषिदत्ता रक्खा गया। रानी बड़ी ही सुकुमारी थी। प्रसव का दुख न सह सकी। मर गई। उसके श्राद्ध के पीछे राजा ही को लड़की का पालन पोषण करना पड़ा। जब वह आठ वर्ष की हुई बाप ने देखा लड़की बड़ी ही सुन्दरी है ऐसा न हो कि उसको कोई आकर उठा ले जाये। इस विचार से वह लड़कों के भेष में रहने लगी। बाप ही ने शास्त्र पुराण इतिहास और गाथायें पढ़ाकर उसको सुशिक्षित बनाया। ऐ राजकुमार! मैं वही हरिसेन हूँ और यह लड़की ऋषिदत्ता है।

—❀ (५)❀—

राजकुमार यह सुनकर बहुत ही प्रसन्न हुआ और ऋषि दत्ता को प्रेम की दृष्टि से देखने लगा। इसने भी इसे देखा दोनों एक दूसरे पर मोहित हो गये। दोनों एक दूसरे को टकटकी बांधकर देखते रहे, मानो मन ही मन कह रहे थे:—

"नैनों अन्दर आव तू, नैन झांप तोहि लूँ।
ना मैं देखूं और को, ना तोहि देखन दूँ॥"

उनकी क्या दशा थी इसे केवल वही समझ सकते हैं जिनको कभी ऐसा अवसर मिला है या जो प्रेम के तत्त्व को समझते हैं।

"नैनों की कर कोठरी, पुतली पलँग बिछाय।
पलकों की चिक डालकर, प्रेमीहि लिया रिझाय॥"

ऋषि उनके मन के भावों को झाँप कर कहने लगा, "राजकुमार! यह लड़की मैं तुझको देता हूँ। इसको लेजा और प्रेम से रख।" राजकुमार ने कहा, 'मैं आपकी इस अमूल्य भेंट को सहर्ष स्वीकार करता हूँ।" तब ऋषि बोला, "अच्छा! अब तुम अपने खेमे में इसको लेकर चले जाओ यहां गृहस्थियों को रहने की आज्ञा नहीं है।" राजकुमार ने हाथ बांध कर कहा, "आप भी मेरे खेमे में चलिये। वहां हम सब लोग आप का प्रसाद पायेंगे।" ऋषि ने उत्तर दिया, "तुम राजा हो। राजा की आज्ञा ऋषि मुनि साधू महात्मा सभी मानते हैं परन्तु खेमे में जाना और जाकर रहना मेरे धर्म्म के विरुद्ध है। जो काम मैंने अब तक नहीं किया वह क्यों करूं?"

राजकुमार ऋषिदत्ता को लेकर खमे में चला आया। कई दिन तक वह वहां रहा। चलते समय वह बिदा होने के लिये ऋषि के पास गया। उसने कहा, मैं तुम्हें दो चार बातें बतलाता हूँ। उनको यदि याद रक्खोगे तो दुख से बचे रहोगे। पहिली बात

यह है कि धर्म और न्याय के साथ राज करना। राजा का न्याय किसी तपस्वी की तपस्या से कम नहीं होता। दूसरी बात यह है कि ऋषिदत्ता का पालन पोषण जंगल में हुआ है। यह महलों के रहन सहन को नहीं जानती। एक दम सीधी सादी है। इसका हृदय बड़ा ही कोमल है। तुम कभी कोई ऐसी बात न कहना और न करना जिससे उसको दुख पहुंचे नहीं तो यह शीघ्र ही मर जायेगी। इसमें सादगी के साथ बहुत से गुण हैं जो बड़े घर की स्त्रियों में भी नहीं होते। इसमें संसारिक सभ्यता की कमी अवश्य है परन्तु तुम जानते हो कि जंगल की गर्द कस्तूरिया हरिन की नाभी में जमकर कस्तूरी बन जाती है। ठीक इसी प्रकार यह इस जंगल की गर्द तुम्हारी संगत से कस्तूरी हो जायेगी। तुम जाओ सुखी रहो। मेरा अन्त समय निकट आ गया है। अब मैं इस शरीर को अग्नि के अर्पण करूँगा।" राजकुमार उसके पाँव पर गिरा, "आत्म हत्या का शब्द मुख से न निकालिये।" ऋषिदत्ता बोली, "मुझ पर दया कीजिये।" ऋषिदत्ता ने उत्तर दिया, 'लड़की तू क्या चाहती है ? जा अपने पति के साथ प्रेम से रह। यदि इसकी और भी रानियाँ हों तो उनसे सौतिया डाह न करना। सब के साथ प्रेम करना। हँसते हुये गुलाब की तरह रहना। जो तुम्हारे सामने आये वह भी प्रफुल्लित हो जाये। घृणा, ईर्षा और राग द्वेष जीवन के विष हैं प्रेम और प्यार अमृत हैं। दुख हो या सुख, अधर्म्म का ध्यान भी मन में न आने पाये। यह शरीर नाशवान है। आज है कल नहीं होगा। कल था आज न रहेगा। इसका रखना व्यर्थ और निरर्थक है। मेरा अन्त समय आ गया है। मुझको इसका ज्ञान है। फिर मैं जान बूझकर क्यों न अभी से इस शरीर को आग के भेंट कर दूँ ! यह आत्म हत्या नहीं है। यह चेत के साथ शरीर का त्याग करना कहलाता है।"

यह कह कर ऋषि ने चिता बनाई, आग लगाकर उस पर

बैठ गया और जिनेश्वरों की महिमा की स्तुति गाता हुआ जल कर भस्म हो गया।

ऋषिदत्ता रोने और विलाप करने लगी, "आह ! पिता जी ! तुम मुझको बहुत प्यार करते थे। मैंने माँ का मुख तक न देखा। तुम ही मेरे माँ बाप दोनों थे। जब केले की जड़ कट जाती है वह गिर पड़ता है। आज तुम्हारी मृत्यु से मेरी जड़ कट गई। मैं दुख के अथाह सागर में डूब रही हूँ।

कनक रथ ने प्रेम के साथ उसके आँसू पोंछे और ढारस देकर कहा, "प्यारी ! तुम किसके लिये विलाप कर रही हो ? तुम्हारे बाप ने लोक और परलोक दोनों ही बना लिये। देखो ! उन्होंने राज भी किया और अन्त में सच्चे ऋषियों की तरह हँसते खेलते हुये शरीर त्याग दिया। शोक तो उनके लिये करना चाहिये जिन्होंने अपने लोक और परलोक बिगाड़े हों।"

तब राजकुमार ने ऋषि का क्रिया कर्म्म किया और जहाँ उनकी राख गाड़ी गई थी वहाँ एक बहुत बड़ा स्तम्भ बनवा दिया रानी के साथ वह रथ मर्दन नगर को लौट आया। अपने माँ बाप के पाँव पड़ा और उनका आशीर्वाद लेकर सुख से रहने लगा। रुक्मिणी से विवाह करने का विचार उसके हृदय से जाता रहा।

जब कावेरी के राजा रानी ने यह बातें सुनीं वह मन में दुखी हुये परन्तु करते क्या ! चुप हो रहे। हाँ रुक्मिणी महा दुखी हुई। वह कनक रथ के साथ व्याह करना चाहती थी। काम और क्रोध के वश में आया हुआ मनुष्य क्या नहीं करता ! उसको धर्म अधर्म का विचार नहीं रहा। कई दिनों तक सोचने पर यह बात समझ में आई कि "जब तक राजकुमार का मन ऋषिदत्ता की ओर से न फिर जाये तब तक काम निकलने की कोई आशा नहीं है।" फिर उसने सुलसा नाम की एक महा धूर्त्त और दुष्टा स्त्री को बुलाया और समझा बुझाकर रथ मर्दन नगर की

ओर भेजा।

यह किसी प्रकार राज महल में नौकरी पा गई। रात के समय ऋषि दत्ता और उसकी सारी सहेलियों को कोई नशीली वस्तु पान में खिला दी। जब सब अचेत होकर सो रहीं उसने किसी के लड़के को मार डाला। उसका लुहू एक प्याले में भर कर ऋषि दत्ता के सिरहाने रख दिया। साथ ही उसी जगह कटा हुआ सर भी लेजाकर रक्खा और बेचारी के मुँह में भी रक्त लगा दिया। जब प्रातःकाल राजकुमार ने देखा उसके मन में घृणा उत्पन्न हुई। वह समय और तरह का था। लोग डाइन और बैताल पर विश्वास करते थे। उसने यह सोच कर कि कहीं यह ऋषि पुत्री डाइन तो नहीं है पूछा, "यह क्या बात है?" बेचारी ने हाथ बाँध कर रहा, "मैं जैनी हूँ। जैनी की लड़की हूँ। तुमने मुझको जंगल में देखा है और मेरे बाप को भी जंगल ही में देखा है। मेरे बाप ने तुमको मेरा सब हाल सुना दिया है। मैं नहीं जानती यह किसका काम है और किस अभिप्राय से किया है! मैं तो एक चिउँटी तक को नहीं सताती! मनुष्य का मारना तो दूर रहा।"

कनक रथ की तसल्ली हो गई और उसके प्रेम को कुछ भी धक्का नहीं पहुँचा। सुलसा यह हाल देख और सुनकर घबराई। फिर कई दिन तक बराबर ऐसा ही होता रहा। महल के लोग बहुत घबराये। नगर के कई मनुष्य राजा के यहाँ आकर दुहाई देने लगे कि उनके कई छोटे छोटे बच्चे मार डाले गये हैं। राजा बहुत ही चकित हुआ। सुलसा ने अवसर पाकर राजा से कहा, "यह रानी बच्चों का मांस खाती और उनका रक्त पीती है। इसी से आप की भी बदनामी हो रही है।"

आजकल ऐसी बातों पर विश्वास नहीं किया जाता परन्तु एक समय था जब इस पवित्र भूमि में ऐसे लोग भी थे। दूर क्यों

जाते हो अब भी कभी मूर्ख स्त्रियां पुत्र और सन्तान के लिये क्या क्या नहीं करती हैं ?

राजा के कान खड़े हुये। सुलसा ने देखा कि उसका जादू चल गया। रात को उसने फिर वही दुष्कर्म किया। दिन निकलते ही राजा को बुला लाई। वह पहले ही से पुलिस और अपने कर्मचारियों पर झुँझला रहा था। पता पाते ही वह स्वयं महल में चला आया। कनक रथ समझ गया कि आज कुशल नहीं है। राजा आते ही राजकुमार को बुरी तरह से डांटने लगा, "तू जानता है कि तेरी स्त्री राक्षसी है और फिर भी उसके साथ रहता है।" उसने कहा, "पिता जी ! संसार में ईर्षा और द्वेष से मनुष्य क्या नहीं करता ! जब तक यथार्थ बात का पता न लगे किसी को बदनाम करना उचित नहीं है।" राजाने एक नहीं सुनी। उसने ऋषिदत्ता के सर बाल पकड़लिये, "राक्षसी ! तूने मेरे कुल को कलङ्कित कर दिया। जा दूर हो।" बेचारी को घर से बाहर निकाल कर जल्लादों को हुक्म दिया "इसका सर उतार लो ऐसा न हो कि और बच्चे इसके हाथ से मारे जायें।

ऋषिदत्ता रोती थी। कनक रथ ने समझाया, "प्यारी ! रोना व्यर्थ है। मैं अबतक भी तुझको निर्दोष समझता हूँ परन्तु बेबस हूँ। बाप के विरुद्ध मैं कुछ नहीं कर सकता। क्या करूँ ! कुछ कहते नहीं बनता।"

हुक्म पाते ही जल्लाद बेचारी को पकड़ ले गये। पहिले नगर की गलियों में घुमाया और फिर उस रोती हुई लड़की को जंगल में लाये। यहाँ वह मूर्छित हो गई। सन्ध्या का समय था। जल्लादों ने सोचा—"यह आप मर गई है। मरे हुये को क्या मारें। उसकी लाश यहाँ ही पड़ी रहने दो। गीदड़ और भेड़िये खा जायेंगे।" वह तो यह सोच समझ कर चले गये और राजा को उसके मार डालने की सूचना दी।

कनकरथ की दशा बुरी थी। उसने आत्म घात करना चाहा परन्तु राजा के हुक्म से उसके हाथ पांव बांध दिये गये। वह कई दिन कारागार में रहा। ऋषिदत्ता की मोहनी मूर्ति उसकी आंखों में समा गई थी। वह दिन रात खाट पर पड़ा रहता और ठंडी आहें भरता था।

—(७)—

जब ठंडी हवा बहने लगी, ऋषिदत्ता ने आँखें खोलीं। अपनी दशा देखी। जल्लादों ने नील से उसका मुँह काला कर दिया था। उसके सर पर झाड़ू बाँध दी थी और सारे शरीर पर नीम के पत्ते लपेट दिये थे। उसने इन सबको दूर किया और जान के डर से भाग निकली। वह रोती हुई कई दिनों पीछे भूखी प्यासी उसी जगह पहुँची जहाँ उसका बाप जल कर मरा था। वह स्तम्भ (खंभे) से लिपट कर रोने लगी, "पिता जी! आओ, देखो तुम्हारी लाड़ली बेटी की क्या दुर्गति है तुमने कभी अपने जीवन में मुझको एक भी बुरी बात नहीं कही थी परन्तु मैंने राजमहल में जाकर न केवल गालियाँ सुनीं किन्तु मेरा हर तरह से अपमान किया गया। मैंने ऐसा क्या पाप किया था जिसका दण्ड इस प्रकार मिला! मैं बराबर धर्म का पालन करती रही। कभी भूल कर भी किसी मनुष्य का हृदय नहीं दुखाया। मैं कैसे समझूँ कि मैं डाइन हूँ और मैंने बच्चों का लहू पिया होगा! परन्तु संसार ऐसा ही कह रहा है। आह! मैंने राजमहल में जाना क्यों स्वीकार किया! मैं निर्दोष हूँ। तुम कहां हो? आओ और मेरी दशा अपनी आंखों से देखो।"

"मां मेरे जन्म लेते ही मर गई। मैंने नहीं जाना कि मां का सुख कैसा होता है! परन्तु बाप ने माँ की जगह लेली। लाड़ और प्यार के साथ पाला! इस प्यारी झील का पानी राजमहल के शरबत से कहीं मीठा और स्वादिष्ट था! इस जंगल के कन्द

मूल महल के मीठे पकवान से कहीं अच्छे थे ! यह फूँस का झोंपड़ा राजमहल से लाख गुना उत्तम था। बाप के प्यार करने वाले हाथ जब सर पर रक्खे जाते थे पति की गोद से कहीं शान्ति-प्रद और सुखदायी थे। ऐ मेरे भाग्य ! तू ने यह क्या खेल खिलाया ! माँ के साथ मुझको भी क्यों न मार दिया। यह दुर्दिन दिखलाने के लिये क्यों जीता रक्खा ? पिता जी ! तुम्हरी लड़की अकेली जंगल में विलाप कर रही है। क्या तुमको दया नहीं आती ऐ मेरे बाप की आत्मा ! यदि मैं तेरी अंश हूँ तो क्यों तुझको मुझ पर दया नहीं आती ? मैंने क्या बुरा काम किया है जो दुख के अथाह सागर में इस प्रकार डूब रही हूँ !"

मैं युवती हूँ ! अबला हूं ! अभी मुझे संसार का अनुभव नहीं है इस सुनसान जंगल में कैसे अकेली रहूँगी ? यह सच है यहाँ कोई नहीं आता। परन्तु यदि कोई आ गया तो मेरी क्या दशा होगी ? किस प्रकार किसी दुष्ट और पापी से अपने आपको बचा सकूँगी ! किसका दोष किसके सर मँढ़ा जाय ! विधाता तेरी विचित्र लीला है ! मनुष्य की बुद्धि उसे नहीं समझ सकती !"

"आह पिता जी ! तुमने चलते समय राजकुमार से कहा था, 'ऋषिदत्ता का हृदय महा कोमल है। एक कठोर बचन या थोड़े ही अपमान करने से मर जायगी।' क्या तुमने झूठ कहा था ? ऋषिदत्ता का हृदय इन्द्र के समान क्यों हो गया ? वह अब तक क्यों नहीं मरी ? परन्तु नहीं तुम झूठे नहीं हो राजकुमार ने ऋषिदत्ता का अपमान या निरादर नहीं किया। न उसने कोई कठोर वचन कहे। वह अब भी उसे सच्चे हृदय से प्यार करता है। और यही कारण है कि अब तक वह जीवित है। प्रेम में बहुत बड़ी शक्ति है। यह मैं भली भाँति जानती हूँ।"

"प्यारे पिता जी ! आओ, अपनी भोली भाली और दुखिया लड़की को ढारस दो ! मैं कहाँ जाऊँ ? क्या करूँ ?"

इस प्रकार रोती हुई ऋषिदत्ता देर तक उस पत्थर के खम्भे से लिपटी रही। घंटों रोने से सुस्ती आगई। चित कुछ कुछ शान्त होने लगा। सोचा समझा, विचारा और झील में नहाकर काले रंग को धो डाला। ऋषभ देव की मूर्ति के पास जाकर सर झुकाया, "जिनेश्वर! आदि तीर्थङ्कर! इस अबला पर दया करो। बाप की आत्मा ने ढारस नहीं दी। माँ बाप जन्म के साथी हैं। कर्म के साथी नहीं हैं। तुम दया के समुद्र हो! जीवों को भव सागर से पार लगाने आये थे। मेरे इस दुख में काम आओ। तुम मुझको न भूलो और मैं भी तुमको न भूलूँगी।"

कान में शब्द आया "धीर्य्य धर मर्दाने कपड़े पहिन ले जिस जड़ी के रंग से तेरा बाप पहिले तुझको अजनबी पुरुषों के भय से रंगा करता था उसी से तू अपने शरीर को नित्य रंग लिया कर। तू ऋषि पुत्री है। कन्दमूल जंगल में बहुतायत से हैं। झील का पानी कम न होगा। तपस्या कर तू ही दुखिया नहीं है। दुख बुरे भले सब पर आता है। महावीर स्वामी जैसे तपस्वी तीर्थङ्कर के कानों में दुष्टों और मूर्खों ने खूँटे ठोंके थे। तू उसी महावीर की आत्मिक पुत्री है। वही तेरा सच्चा बाप है। उसका ध्यान बराबर तेरे साथ रहकर तेरी सँभाल करता रहेगा। झोंपड़े के एक कौने में अब तक तेरे बाप की धर्म्म पुस्तकें पड़ी हुई हैं। उनका नित्य पाठ किया कर। पूजा बन्दना और तपका ध्यान रहे। समय आयेगा जब तेरे भाग्य उदय होंगे। सब तुझको निर्दोष कहकर प्यार करेंगे। रोना चिल्लाना बन्द कर। इससे कोई लाभ नहीं है ऋषि पुत्री को ऋषि के समान रहना चाहिये।" आँसू की धार बन्द हो गई। उसने सोचा "क्या यह शब्द मेरे ही हृदय से निकले हैं! क्या आश्चर्य जिनेश्वरों की प्रेरणा से ऐसा हो।" दुख की मारी हुई ऋषिदत्ता ने अपने आप को वैसा ही बना लिया।

(८)

रुक्मिणी को अब आशा की झलकती हुई मूर्ति दिखलाई देने लगी। राजा रानी की जान में जान आई। पुरोहित फिर पहुँचा। हेमरथ ने बेटे को बुला भेजा, "पुत्र! तू कब तक मरी हुई डाइन के लिये दुखी रहेगा? जो होने को था हो गया! होने वाली बात होकर रहती है। क्षत्री का धर्म कठिन है। औरों को अपना ही दुख होता है। क्षत्री दूसरों के दुख से दुखी रहता है। तेरा धर्म है कि प्रजा का पालन करे। तू फूल था। अब सूख कर कांटा हो गया है। तुझसे राजमहल की शोभा थी। तेरे सुख की कान्ति और चमक दमक जाती रही। यदि फूल है तो खिलकर अपने सुगन्ध को चारों ओर फैला और यदि दीपक है तो चमक चमक कर सब को प्रकाश दे। तू मेरी आँखों का तारा है। देख तेरे दुखी रहने से मेरी और तेरी माता की क्या दशा हो गई! अपने लड़के को कोई दुखी नहीं देखना चाहता। दशरथ ने पुत्र के शोक में प्राण त्याग दिये। क्या तू मुझको दूसरा दशरथ बनाना चाहता है? छी! छी!! बेटे! यह तू क्या कर रहा है! अपने धर्म को देख। जा कावेरी का पुरोहित तुझको बुलाने आया है। रुक्मिणी के साथ व्याह करके सुखी रह मेरे पीछे राजगद्दी पर बैठ कर न्याय के साथ प्रजा का पालन कर। यह मेरा हुक्म है। यही मेरी इच्छा है। माँ बाप की आज्ञा न मानना अधर्म है। मां बाप को प्रसन्न रख और तू भी संसार में सुखी रहेगा।"

राजकुमार ने बाप की आज्ञा मान ली और फिर सेना लेकर कावेरी की ओर चल निकला।

(९)

राजकुमार कई दिनों के पीछे उसी जंगल में आया जहाँ ऋषिदत्ता उसे पहिले पहिल मिली थी। उसने झील को देखा। झील के किनारे खजूर और केले के वृक्षों को देखा—"हाय!

यह वही जगह है जहाँ प्यारी ऋषिदत्ता का दर्शन मिला था! वही झोंपड़ा! वही मन्दिर! वही मूर्ति! जिसे देखकर पहिले चित्त प्रसन्न हुआ था आज वही महा दुखदायी प्रतीत हो रहा है। अमृत विष हो गया। ऋषि पुत्री को संसार ने डाइन बनाकर छोड़ा। अब मेरे जीवन का सहारा न रहा। वह चली गई और मैं अबतक इस असार संसार में दुख भोगने के लिये जी रहा हूँ। कौन जाने ऋषिदत्ता कैसी थी परन्तु मैं तो निर्दोष हूँ। मुझ पर क्यों दुख का पहाड़ आकर गिर पड़ा!"

वह इसी प्रकार विलाप करता हुआ मन्दिर की ओर बढ़ा। दाहिनी आँख फड़कने लगी, "हाय! यह क्या शकुन है! क्या फिर किसी देवी का दर्शन मिलेगा! विधाता ने एक से मिलाकर अलग कर दिया। अब क्या होने वाला है?"

जब वह मन्दिर के अन्दर गया एक पन्द्रह सोलह वर्ष का बांका और रूपवान साधू टोकरी में फूल लिये हुये आया। उसका रङ्ग बहुत ही काला था परन्तु देखने में बड़ा ही सुन्दर और तेजस्वी प्रतीत होता था। यह ऋषिदत्ता थी। उसने सोचा, "कनकरथ रुक्मिणी के साथ व्याह करने जा रहा है। इसके अतिरिक्त और कोई कारण उसके यहां आने का नहीं हो सकता।" उसने फूल सामने रक्खे। राजकुमार ने ले लिया और पूजा करने के पीछे उस साधू को आदर सत्कार के साथ बिठाया और कई अच्छे२ कपड़े भेंट किये। ऋषिदत्ता को कपड़ों की आवश्यकता भी थी इसलिये उसने ले लिये।

राजकुमार ने पूछा, "आप कब से यहां आये? कैसे आये? कब तक रहेंगे? और कब यहां से जाँयेंगे?" ऋषिदत्ता मुसकराई, "यहाँ आये हुये मुझको कई वर्ष हो गये। घूमते फिरते हुये यहाँ आ गया। कब तक रहूँगा या कब यहाँ से चला जाऊँगा इन प्रश्नों का कोई उत्तर नहीं दे सकता क्योंकि रहना और जाना अन्न जल के आधीन है। पहिले यहाँ एक ऋषि हरिसेन रहते थे।

उनकी लड़की ऋषिदत्ता बड़ी ही सुन्दरी और धर्मात्मा थी। कोई राजपूत आकर उसको ले गया। ऋषि भी मर गया। मुझको यह जगह पसन्द आई। इसलिये यहां आकर डेरा जमाया। आज आपके देखने से मेरे तप का फल मुझको मिल गया।"

राजकुमार—"यह बात मेरी समझ में नहीं आती। आप की बातों से मुझको सुख और आनन्द मिलता है और मेरी आँखें आपकी ओर से नहीं हटना चाहतीं।"

ऋषिदत्ता—"इसमें आश्चर्य की क्या बात है? प्रेम की धार दोनों ही ओर से निकलती है। शहरों की गलियों में घूमते फिरते हुये हम को बहुधा ऐसी सूरतें देखने में आती हैं जिनसे प्रेम हो जाता है और दूसरों से घृणा हो जाती है। कमल सूर्य को देखकर खिल जाता है। कुमुदनी को चाँद के दर्शन से सुख मिलता है परन्तु सूर्य के दर्शन से कुमला जाती है। इस संसार में हर जगह यही दशा है।"

राजकुमार—"दिल चाहता है कि आप मेरे मित्र हों।"

ऋषिदत्ता—"फ़क़ीरों से कब कोई करता है प्रीत।
मसल है कि योगी हुये किस के मीत॥"

राजकुमार—परन्तु अपना दिल आप को कैसे खोल कर दिखाऊँ? आप मेरी बातों का विश्वास नहीं करते।"

ऋषिदत्ता—मुझे आप पर विश्वास है। दिल को दिल से राह है। दिल दिल की बात तो भली भाँति समझता, जानता, और पहिचानता है। इसके लिये किसी गवाह की आवश्यकता नहीं है।"

राजकुमार—"तब मेरे साथ कावेरी को चलिये। बिना आप के मेरा एक पग भी आगे की ओर न पड़ेगा। लौटने पर मैं आप को यहाँ पहुँचाकर तब अपने देश को जाऊँगा।"

ऋषिदत्ता—"राजा और साधू का मेल कैसा?"

राजकुमार—"साधू दयालु और कृपालु होते हैं। वह दूसरों

की प्रार्थना को अस्वीकार नहीं करते। महाराज ! मैं आपकी सेवा तन मन और धन से करूँगा "प्राण तक आप पर न्योछावर है।"

ऋषिदत्ता—"यह आप कहते क्या हैं ? कहना सहल और करना कठिन है किसका प्राण किस पर न्योछावर हुआ है ! यह सब कहने की बातें हैं। यही तो मुख्य कारण है कि साधू संसार को छोड़कर सबसे अलग थलग रहते हैं।"

राजकुमार के साथियों ने भी साधू से चलने की प्रार्थना की साधू भी यही चाहता था कि राजकुमार साथ रहे। साधू ने राज कुमार की बात मानली। दोनों रात के समय एक ही कमरे में सोये। कई दिनों पीछे कावेरी नगर में पहुँचे। साधू और राजकुमार बराबर साथ साथ रहा करते थे केवल सन्ध्या के समय दोनों अलग हो जाया करते थे। उस समय साधू अपना रंग बदल लिया करता था।

—❀ (१०) ❀—

राजा सूरसुन्दर ने आदर के साथ राजकुमार को महल में लेजाकर उतारा। धूम धाम के साथ उत्सव मनाया गया। नाच रंग के जलसे होते रहे। शुभ महूर्त्त में रुक्मिणी के साथ ब्याह भी होगया। वह दोनों साथ रहने लगे परन्तु कनकरथ को साधू के प्रेम का इतना ध्यान रहता था कि वह उसके कमरे के निकट ही सोता था।

एक दिन रुक्मिणी ने पूछा, "महाराज ! वह अभागिनी ऋषिदत्ता कैसी थी जिसने आपके मनको चुरा लिया था ?"

राजकुमार बोला, "सूर्य को उसके सदृश्य कैसे कहूँ ! वह गर्म है। चाँद से कैसे उपमा दूं। वह काला और कलंकित है। इन्द्र की परियाँ उसके सामने तुच्छ हैं। मेनका उसको देखकर दासी बनने की इच्छा करती जैसे मस्त मोर अपने पैरों के देखकर

महा मलीन हो जाता है वैसे ही उर्वशी भी अपने रूप को भूलकर लज्जित हो जाती। कमल कीचड़ से उत्पन्न होता है। ऋषिदत्ता ऋषि पुत्री थी वह साक्षात् सौन्दर्य की देवी थी। ब्रह्मा ने आज तक ऐसा सुन्दर सलोना रूप नहीं बनाया था। तुमने देखा नहीं। इसलिये तुम समझ नहीं सकती हो !'

रुक्मिणी—"मेरे ही मुँह पर मेरी सौत की इतनी बड़ाई है ?"

राजकुमार—"फिर तुमने पूछा क्यों ?"

रुक्मिणी—"इसलिए कि मैं तुमसे सुनू किँ वह डाइन थी !"

राजकुमार—"मैं कुछ नहीं कह सकता।"

रुक्मिणी—"तो क्या अब भी आपको उसका प्रेम है ?"

राजकुमार—"क्यों न हो ! यह दिल मरते मरते भी उस पवित्र देवी के सच्चे प्रेम को भुला न सकेगा।"

रुक्मिणी—के शरीर में आग लग गई। वह आप ही बोल उठी, "हाय ! सुलसा का कोई उपाय काम नहीं आया ! मेरी सौत अब तक राजकुमार के हृदय में बसती है ! मुझको कैसे चैन आये ! मैं उसे जीवित पाकर कैसे सुखी रह सकती हूँ ! मैंने सब कुछ कर डाला परन्तु, वह अब तक तुम्हारे पास है !"

राजकुमार—"तुमने क्या क्या किया ?"

रुक्मिणी क्रोध की अग्नि में जल रही थी अपने आपको सँभाल न सकी। ऐसा जान पड़ता था मानों सरस्वती देवी उसकी जिभ्या पर बैठ कर ऋषिदत्ता को निंदोष सिद्ध कराने आई थी। वह बोली थी, "मैंने ही तो सुलसा की सहायता से उसे डाइन प्रसिद्ध कराया। उसीने उसके मुंह से लुहू लगाया। कई लड़कों की जानली। मैंने तुम्हारे लिये पाप किये फिर भी तुम मेरे नहीं

हुये और मरने पर भी ऋषिदत्ता की याद को नहीं भूलते !'

राजकुमार—"अरी दुष्टा और पापिनी रुक्मिणी ! तू ने अपने साथ मुझको भी नर्क में ढकेल दिया ! काम के वशीभूत होकर तू ने एक अद्वितीय देवी की जान ली !"

यह कह कर उसने रुक्मिणी को अपने पास से ढकेल दिया और आप भागकर अपने साथियों के ख़ेमे में आया। लकड़ियां पड़ी हुई थीं, चिता बनाई और उसी समय उसमें बैठकर जल जाना चाहा। साथियों ने पकड़ लिया। महल में कोलाहल मच गया। सूर सुन्दर भी दौड़ता हुआ आया, "राजकुमार ! मैं सब सुन चुका हूँ। होने वाली बात होकर रहती है। तुम स्त्री न बनो और स्त्री की तरह जान न दो।"

उसने कहा, "अब मेरा जीना कठिन है। मैंने कमल को झील से निकालकर आग में झुलस दिया। यह महा पाप है ! यह मुझे कभी जीने न देगा। मैं कुढ़ कुढ़ कर मरूँगा।"

रुक्मिणी भी महादुखी हुई। महल की स्त्रियों ने उसको बहुत ही धिक्कारा। वह भी रोती हुई आ पहुंची। और अपने अपराधों के क्षमा करने के लिये प्रार्थना करने लगी। राजकुमार ने उसकी ओर आंख तक नहीं उठाई।

अन्त में लोगों ने उस भेष बदले हुये साधू से जो वहां ही था, "महाराज ! राजकुमार के हृदय में आपकी श्रद्धा और भक्ति है। आप उसको आत्म हत्या से बचाइये।"

साधू ने राजकुमार से कहा, "राजकुमार ! एक साधारण, स्त्री के लिये इस प्रकार जान देना तुम्हारे लिये उचित नहीं है। तुमने बचन दिया था कि मुझको झील के किनारे पहुँचा दोगे। क्या भूल गये ? क्षत्री अपने प्रण को निबाहते हैं; अपनी बातों पर आरूढ़ रहते हैं। इसके अतिरिक्त यदि तुम मर जाओगे तो फिर ऋषिदत्ता से कैसे मिल सकोगे ! यदि जीवन है तो सम्भव है कि

वह फिर कहीं से आकर तुमसे मिल रहे।"

राजकुमार—"महाराज! मुझको धोखा न दो। झूँटी आशा न बँधाओ। साधू झूठ नहीं बोलते। मरे हुये से कैसे मिलना सम्भव है?"

साधू—"मुझको बचन दो और मैं ऋषिदत्ता से तुमको मिला दूंगा। मैं विश्वास दिलाता हूँ।"

राजकुमार—"फिर तो कहिये क्या आपने उसको कहीं अपनी आंखों से देखा है या किसी से सुना है? क्या वह अब तक जीती है, और आप उसका स्थान जानते हैं? कहिये और जल्द कहिये। मेरे दुखों को दूर कीजिये।"

साधू—मैं जानता हूँ और भली भाँति जानता हूं कि वह अब तक जीती है। मैं अपने मित्र के लिये उसे यहाँ मँगा भी सकता हूँ।

राजकुमार—"यदि यह सम्भव है तो देर न कीजिये। आप जो कुछ कहेंगे मैं करूँगा। या तो यह प्राण इस शरीर से अभी निकल जाये या मेरी ऋषिदत्ता मुझको मिल जाये।"

साधू—"उसे बहुत दूर से लाना है। तुम शान्त और सावधान हो जाओ।"

राजकुमार—"मैं इससे पहिले तुमको अपना मन दे चुका था। अब आत्मा तक तुम पर न्योछावर करने को तैयार हूँ।"

साधू—"आत्मा अपने पास रहने दो नहीं तो तुम ऋषिदत्ता से कैसे मिल सकोगे! हां एक बार अवश्य दो। यदि तुम देने को तयार हो तो इनकार न करो और मैं ऋषिदत्ता को तुम से अवश्य मिला दूंगा।"

राजकुमार—"जी हां! स्वीकार है।"

साधू—"तब मैं ऋषिदत्ता को लेने जाता हूं।"

—❀ (११) ❀—

साधू परदे के अन्दर चला गया, नहाया धोया, रंग बदला उस समय तक लोग राजकुमार को पकड़े हुये थे कि कहीं वह चिता में कूद न पड़े।

थोड़ी देर पीछे खेमे के परदे से एक महा सुन्दरी और अति सुकुमारी स्त्री धीरे धीरे मस्त हाथी की तरह रुक रुक कर पांव जमाती हुई आई। बादल के परदों को फाड़ कर जैसे बरसात के दिनों में फुदकता हुआ चांद निकल आया करता है वैसे ही वह स्त्री भी इठलाती हुई आई। "यह कौन है ? किसकी लड़की है ? क्या इन्द्र ने किसी अप्सरा को पृथ्वी पर भेजा है ? या साक्षात् सौन्दर्य ने रूप धारण कर रक्खा है।" राजकुमार ने देखा। अपने आपको छुड़ा कर दौड़ता हुआ उसके पास आया, "मेरी प्यारी ऋषिदत्ता मेरी प्यारी रानी !" और उसके गले से चिपट गया। दिल का उबलता हुआ सोता आँखों की नहरों से गर्म पानी की धार बहाने लगा। यह पानी की बूंदें हैं या हृदय के अथाह सागर के अमूल्य मोती हैं। जो प्रेमी अपनी प्रिया पर प्रेम के साथ न्योछावर कर रहा है !

लोगों ने कहा, "ऋषिदत्ता और रुक्मिणी में आकाश और पाताल का भेद है। कहाँ पूर्णिमा का चमकता हुआ चाँद कहां टिम टिमाता हुआ दीपक ! कहां हंस और कहां बगुला ! कहाँ कुन्दन किया हुआ सोना ! और कहां पीतल !" सूरसुन्दर ने राजकुमार को हटाकर ऋषिदत्ता को गोद से चिमटा लिया, "तू मेरी धर्म की बेटी है। मैं तुझको देख कर बहुत ही प्रसन्न हूँ। तू ने दोनों कुल को पवित्र कर दिया। ऐसे रत्न खान और समुद्र में कहां मिलते हैं ! तेरे साथ बड़ा ही अन्याय किया गया। रुक्मिणी लज्जा से पसीने पसीने हो रही थी और टकटकी बाँध करे उसको देखती रही। घराती बराती दोनों दंग रह गये, "यह लक्ष्मी है या

सरस्वती है ! दुर्गा है या और कोई देवी है ! नख सिख से ऐसा सुन्दर रूप ब्रह्मा ने आज तक नहीं बनाया। देवी ! तू धन्य है !" उसी समय माली फूलों के टोकरे लाये और सब ने उस सुन्दर जोड़ी पर फूल बरसाये। जय जय कार की ध्वनि से भूमण्डल और नभ-मण्डल गूँज उठा। राजमहल में नौबत बजने लगी। मन्दिरों में घंटे और शंख बजने लगे। श्रद्धालू जैनी-प्रजा तीर्थङ्करों की स्तुति के गीत गाने लगी।

—❀(१२)❀—

सूरसुन्दर राजकुमार और ऋषिपुत्री को महल में लाया। रानियाँ लड़की से गले मिलीं। जो आनन्द सब को प्राप्त हुआ वह लिखने में नहीं आ सकता क्योंकि इस समय आनन्द की देवी साक्षात् रूपधारी होकर वहाँ बिराजमान होगई थी। रुक्मिणी अपनी सौतिया डाह को भूल गई। राजा सबके सामने उसे बहुत ही डाँटने लगा परन्तु ऋषिदत्ता ने उसे हाथों के इशारे से मना किया। वह अपने पति (राजकुमार) से कहने लगी, "स्वामी ! प्राणनाथ ! तुम ने साधू को वर देने के लिये वचन दिया था। याद है या नहीं ?"

राजकुमार—"हाँ प्राण प्यारी ! याद है।"

ऋषिदत्ता—"फिर मैं उसी साधू के मुख से बोलती हूँ इस मेरी बहिन रुक्मिणी को अपने गले से लगा लो। राजा ने मुझको अपनी बेटी बनाया है। बड़ी बहिन अपनी छोटी बहिन के दुख को नहीं देख सकती। यदि तुम मुझको प्यार करते हो तो इसको भी अपनी स्त्री बनाओ। मेरे बाप ने मरते समय आपके सामने कहा था "पति की स्त्रियों से प्रेम करना" और मैं बहिन के साथ सच्चा प्रेम करूँगी। मैं तुमको दूसरी रानी देती हूं और जीवन पर्यन्त तुम दोनों की सेवा करती रहूँगी। मेरे हृदय में कोई अनुचित भाव भी न आयेगा।"

सब के सब दंग रह गये। ऋषिदत्ता स्वर्ग या किसी और ऊँचे मण्डल की देवी है। रुक्मिणी के सर पर पानी के सैकड़ों घड़ा पड़ गये। यह रोती हुई ऋषिदत्ता के पाँवों पर गिर पड़ी। उसने उठाकर गले से लगाया और अपने आँचल से उसके आँसू पोंछे। फिर राजकुमार के हाथ में उसका हाथ देकर दोनों के गले मिला दिये, मैं अपनी बहिन का ब्याह आज तुम्हारे साथ करती हूँ। इस के आदर सत्कार में कोई भी कमी न आने पाये नहीं तो मुझे बहुत ही दुःख होगा।"

राजा ने राग रंग का जलूस सजाया। कई दिन तक धूम धाम रही। सुलसा को गदहे पर बिठा कर सारे नगर में उसी प्रकार घुमाया गया। जब ऋषिदत्ता ने यह सुना राजा को समझा बुझाकर उसकी जान बचाई। हाँ वह उस राज से निकालदी गई।

फिर राजकुमार दोनों स्त्रियों को लेकर अपने नगर को लौटा। राह में झील के किनारे पहुँचकर ऋषभदेव की पूजा करके अपने नगर में आया। हेमरथ इन सब बातों को पहिले ही सुन चुका था। वह आगे राजकुमार को लेने आया। ऋषिदत्ता से अपने अपराधों के क्षमा करने के लिये प्रार्थना की प्रेम के साथ सबको राज महल में ले गया।

—❀ (१३) ❀—

इस घटना का राजा के चित्त पर बड़ा ही गहरा प्रभाव पड़ा उसने राज काज राजकुमार को सौंप दिया। पुराने राजाओं के समान जंगल में जाकर तप करने लगा और भद्राचार्य्य का शिष्य हो गया। कनकरथ ने बड़ी उत्तमता और न्याय के साथ राज किया ऋषिदत्ता से एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम सिंहरथ रक्खा गया। वह अपनी माँ के रंग रूप का था।

जब सिंहरथ सयाना हुआ एक दिन कनकरथ ऋषिदत्ता को साथ लिये हुये महल के दरीचे पर बैठा हुआ था। आकाश

मण्डल में घने बादल की काली घटायें उमड़ आईं। हवा चली और दम के दम में सब को उड़ा ले गई। कनकरथ बोला, "प्यारी आकाश के बादल हम को उपदेश दे रहे हैं कि मनुष्य जीवन पानी का बुलबुला है। बादल आते हैं जाते हैं। पानी में बुलबुले उठते हैं और फूट जाते हैं। रात को तारे निकलते हैं और सूर्य्य के निकलते ही छुप जाते हैं। सब कुछ हो गया। अब जीवन को भोग विलास और खेल कूद में बिताना भूल है।" वह दोनों ऋषि के पास गये और उसकी पूजा की वाटिका को उसे भेंट चढ़ाया। फिर अपने समय पर उसी झील के किनारे जाकर तप करने लगे और अपने जीवन को सुफल कर लिया।

रति सुन्दरी

रति सुन्दरी साकेतपुर के राजा केसरी की लड़की थी। माँ का नाम कमल सुन्दरी था। वह पढ़ी लिखी धर्मात्मा और पतिव्रता थी इसलिये उसने अपनी लड़की को भी उत्तम रीति से शिक्षा दी।

यह लोग जैनी थे क्योंकि उस समय जैन धर्म का प्रचार धूम धाम के साथ था। कहने के लिये चाहे कोई कुछ कहे परन्तु जैनियों का शुद्ध धार्मिक जीवन औरों के लिये सदैव से प्रभावशाली और शिक्षाप्रद रहा है। जैनी कहते थोड़ा थे परन्तु करते बहुत थे। यह लोग अपने जीवन को धर्म्म और सचाई के साँचे में ढाल कर सुन्दर बनाते थे। यही कारण है कि देखते २ वह थोड़े ही दिनों में सारे देश का राजधर्म्म बन गया। बौद्धों की तरह इनके यहाँ भी पढ़ने लिखने का सिलसिला बराबर चला आता है। लड़का हो या लड़की दोनों को पढ़ना लिखना सिखाया जाता था जिससे वे अपने धर्म्म को जानें और समझें। आज कल के जैनियों की दशा पर न जाओ। इस समय उनकी अवस्था शोचनीय है। जब

वह उन्नति के शिखर पर थे उनके सद्भाव और सद्गुण सराहने योग्य थे। यह अपने धर्म का पालन बहुत ही उत्तमता के साथ करते थे। पुरुषों और लड़कों को जैनी भिक्षु और लड़कियों को जैनी भिक्षुनियाँ शिक्षा और उपदेश देती थीं। राजकुमारी रति-सुन्दरी को भी एक जैनी भिक्षुनी ने पढ़ाया लिखाया था। वह कर्म्म धर्म की बातों को भली भाँति समझती थी। वह बड़ी ही विवेकी और बुद्धिमान थी। समय के अनुसार काम करना भी वह भली भांति जानती थी।

जब रतिसुन्दरी युवा अवस्था को प्राप्त हुई माता पिता ने उसका विवाह नन्दन नगर के राजा चन्द्र के साथ कर दिया। वह अपने पति के घर गई। रतिसुन्दरी बड़ी ही रूपवती थी। राजा चन्द्र उसको देखकर मोहित हो गया। रात दिन उसके साथ रहता और किसी काम काज में जी नहीं लगाता था। रतिसुन्दरी ने यह दशा देखी। उसने धीरे २ जैन शास्त्रों को सुना सुनाकर पति की काया पलट दी। उसमें वैराग और धर्म्म भाव आ गया। फिर भी दोनों में गहिरा प्रेम था और एक दूसरे को सच्चे हृदय से प्यार करते थे।

चन्द्र और रतिसुन्दरी सुख सम्पन्न जीवन व्यतीत करते थे। संसार में काल का चक्र चलता ही रहता है। यहां एक दशा नहीं रहने पाती। दिन के पीछे रात, और सुख के पीछे दुख आता ही रहता है। इनके जीवन में भी ऐसा समय आ गया जिसका स्वप्न में भी ध्यान नहीं था।

कुरु देश का राजा महेन्द्रसिंह बड़ा ही पराक्रमी और तेजस्वी था। साथ ही विषय भोग में भी लम्पट रहा करता था। इसके दरबार में एक मनुष्य जयचन्द्र नाम का था जो अपने स्वार्थ और लाभ के लिये उसको भोग विलास की बातों में फँसाये रखता था। एक दिन उसने महेन्द्रसिंह से कहा कि "इस भारतवर्ष में

राजा चन्द्र की रानी रतिसुन्दरी जैसी रूपवती कोई स्त्री संसार में नहीं है।"

रतिसुन्दरी—की सुन्दरता का हाल सुनकर महेन्द्रसिंह के मन में नाना प्रकार की बुरी २ भावनायें उत्पन्न हुईं जयचन्द्र उसे नित्य ही भड़काता रहा। अन्त में राजा ने पतित होकर निर्लज्जता के साथ राजा चन्द्र के पास पत्र भेजा कि अपनी रानी रतिसुन्दरी को मेरे राज महल में भेज दो नहीं तो तुम्हारी कुशल नहीं है। महेन्द्रसिंह के दूत ने अपने राजा का सँदेशा अभिमान के साथ दरबार में सुनाया। फिर क्या था! चन्द्र के साथियों ने उसकी बड़ी ही दुर्गत की। वह किसी प्रकार भागकर कुरु देश में आया और सारी बातें राजा को सुना दीं।

जिस समय महेन्द्रसिंह ने अपने दूत के अपमान का हाल सुना इसी बहाने से वह नन्दन नगर पर चढ़ आया। बहुत बड़ी लड़ाई हुई। कई दिन तक लोहे से लोहा बजता रहा चन्द्र के पास बहुत थोड़ी सी सेना थी। वह हार रहा। चन्द्र को पकड़ कर पहाड़ की ओर ले गया और महेन्द्रसिंह का नगर पर पूरा अधिकार जम गया वह तड़पता हुआ रतिसुन्दरी के महल में गया। रतिसुन्दरी को देखते ही मोहित हो गया और बलात्कार उसे अपने साथ महल में ले गया। उसको भय था कि नन्दन नगर की प्रजा उसके वश में न आयेगी। उसने नगर को छोड़ दिया और राजा चन्द्र फिर लौट कर राज काज करने लगा।

रतिसुन्दरी अब महेन्द्रसिंह के राज महल में आ गई। वह रात दिन चिन्ता में रहा करती थी। एक तो पति के वियोग और उसके दुःख से दुखी थी दूसरे अपने पतिव्रत धर्म के बचाने का ध्यान था। इसी सोच विचार में वह रात दिन दुखी रहने लगी।

कई दिन के पीछे महेन्द्रसिंह उसके महल में आया और

उससे कहने लगा. "सुन्दरी ! तू जानती है कि चन्द्र से और मुझ से क्यों लड़ाई हुई ? दूत का अपमान एक बहाना था। मैं तेरे प्रेम में दुखी था। आज मेरा भाग्य उदय हुआ है कि तू मेरे महल में आई है। अब मैं तुझ से प्रार्थना करता हूँ कि तू मेरी रानी बनना स्वीकार कर जिससे हम दोनों का जीवन सुफल हो।"

रतिसुन्दरी ने काम वश राजा की बातें सुनी और मन ही मन अपनी सुन्दरता पर पछताने लगी—"मैं सुन्दरी न होती तो पति के वियोग का दुख क्यों सहती ! और क्यों मेरे लिये लुहू की नदी बहाई जाती ! क्या करूँ क्या न करूँ ! प्राण त्यागती हूँ तो आत्मघात का महा पाप होता है और यदि ऐसा नहीं करती तो पतिव्रत धर्म के भङ्ग होने का भय है। शरीर छोड़ना बहुत ही सहल है परन्तु मेरी इच्छा है कि एक बार और पति का दर्शन कर लूँ फिर मरने का दुख न होगा। महेन्द्र सिंह समझाने बुझाने से नहीं मानेगा। वह काम के नशे में चूर है। सम्भव है अधिक कहने सुनने पर दुष्टता कर बैठे। इस लिये यहाँ चाल से काम लेना ही उचित है।"

यह सोच कर रतिसुन्दरी ने मुस्करा कर कहा, "महाराज ! आपकी क्या बात है ! आप बलवान हैं, श्रेष्ठ हैं, पराक्रमी हैं। मैं अबला स्त्री हूँ और आप से कुछ दान मांगना चाहती हूँ। यदि आप मेरी प्रार्थना स्वीकार करें तो जो कुछ आप कहेंगे मैं सुनूँगी।" राजा ने कहा, "ऐसी क्या वस्तु जो मैं नहीं दे सकता। तेरे ऊपर तन मन, राज पाट, धन द्रव्य, मान प्रतिष्ठा, कर्म्म धर्म्म सब कुछ न्योछावर है। तेरी आज्ञा का पालन करना मेरा परम धर्म्म है।" रानी हँसकर बोली, वास्तव में आप बड़े ही उदार चित्त हैं। मैं और कुछ नहीं माँगती। केवल यह चाहती हूँ कि चार महीने के लिये मुझ को ब्रह्मचर्य का तप करने का अवसर दिया जाये। चार महीने अधिक नहीं होते।"

राजा काम के वश में था उसकी आँखों पर चरबी छा गई थी। चार महीने उसके लिये चार युग होगये परन्तु करता क्या! वचन हार चुका था और रतिसुन्दरी को अप्रसन्न भी नहीं करना चाहता था, बोला, "जैसी तेरी इच्छा।" यह कहकर महल से बाहिर चला आया।

रतिसुन्दरी उसी दिन से वह अभ्यास करने लगी जिसे जैन शास्त्रों में "आंबल तप" कहते हैं। भूषण और वस्त्र अलग रख दिये। सादा कपड़ा पहिन लिया और कठिन तपस्या करने लगी।

अभी चार महीने नहीं बीते कि महेन्द्रसिंह उसके पास आया। देखता क्या है कि चन्द्र को ग्रहण लग गया। रतिसुन्दरी दुबली पतली होगई है। राजा ने पूछा, "यह क्या कर रही है?" वह बोली, "मैंने आंबल तप धारण कर रक्खा है। चार महीने तक बराबर तप करूँगी इस समय के अन्दर यदि तुम मेरे व्रत को भङ्ग करोगे तो याद रक्खो हम और तुम दोनों नर्क में पड़ेंगे।" राजा ने कहा, "संसार सुख और आनन्द भोगने की जगह है। यह मार्ग तपस्वियों का है। मेरा तेरा नहीं है।" रति-सुन्दरी बोली, "सुनो राजा मनुष्य जन्म सदा नहीं मिलता। जो कुछ समय जप तप में बीते वही सुफल है। इस देह की सुन्दरता में क्या धरा है! आज मरे कल दूसरा दिन। यह शरीर दुर्गन्ध का पात्र है। मल मूत्र के अतिरिक्त इसमें धरा क्या है! इस पर मोहित होना मूर्खता है।" उसने सितार उठाकर हाथ में ले लिया और मस्त होकर गाने लगी:—

शब्द

कर ले निज उपकार, मानुष तन पाया (टेक)

१. नर शरीर दुर्लभ देवन को, मन में सोच विचार। मा०

२. अबकी चूक होय पछतावा, यह अवसर नहिं बारम्बार। मा०

३. भक्ति भाव गह ले गुरु शरनी, तज दे विषय विचार ॥ मा०
४. रात दिवस रहै लम्पट जग में, भजै न सत् करतार । मा०
५. श्री गुरु चरन शरन बलि हारी, जा भव निधि के पार ॥ मा०

राजा चुप चाप सुनता रहा परन्तु उस पर कुछ भी प्रभाव न पड़ा। काम ने उसको अन्धा बना दिया था। रति सुन्दरी ने देखा कि चार महीने बीतने पर यह जान न छोड़ेगा इसलिये कोई ऐसी चाल चलनी चाहिये कि इसके हाथों से छुटकारा मिले । वह बड़ी ही बुद्धिमान् थी । शास्त्रों का यथार्थ अर्थ बड़ी उत्तमता से समझती थी। उसने सोचा कि मैंने तप कर लिया है, चित्त में एकाग्रता आ गई है, इस समय जिस विषय को विचारूँगी उसमें सफलता अवश्य प्राप्त होगी। जैनियों के ग्रन्थ में अलंकृत भाषा में "शासन देवी" की कथा आई है। मूर्ख उसे कहानी और दन्त कथा समझते हैं परन्तु मनोनियम (Mentalism) के जानने वालों के लिये गुप्त रीति से उसमें विचार की प्रबल शक्तियों के सम्बन्ध में ऐसी ऐसी विचित्र बातें मिलती हैं जिनके अनुष्ठान करने से मनुष्य जो चाहे वह कर सकता है और हो सकता है। विचार में महान् शक्ति है । विचार ही का प्रभाव चारों ओर पड़ता है । एकाग्रता के साथ विचार करते रहने से रूपवान कुरूप और कुरूप सुन्दर बन सकता है। यह योग विद्या का खेल और छोटा सा काम है। वास्तव में मनुष्य का जीवन विचार से बना है। शरीर, नस, नाड़ी, आंख नाक कान केवल मनुष्य के विचार की धारों के घने रूप हैं। मन में एक विचार उत्पन्न हुआ और वही मन पर व्याप गया। फिर धीरे धीरे वह अपना रङ्ग रूप दिखाने लगता है और अभ्यासी को जैसी इच्छा होती है वैसा ही वह बन जाता है। यही ध्यान योग, यही ध्यान मार्ग, यही चिन्तन शक्ति जैनियों की शासन देवी का शासन है। यह बहुत ही गूढ़ विषय है । इसे केवल

ऊँची समझ वाले समझते हैं। सर्व साधारण इसे नहीं समझ सकते।

रतिसुन्दरी—मन में यह विचार दृढ़ और घना करने लगी कि मैं कुरूप हूँ, कुष्ठी हूँ, शरीर से दुर्गन्ध निकलती है। देह में फोड़े फुन्सी निकल आये हैं जिससे पीप और लुहू बहा करता है और मनुष्य को देखकर घृणा होती है। अभ्यास करते करते उसका रूप बदल गया। विचार शक्ति ने अपना बल दिखा दिया। चौथे महीने के बीतते ही वह रानी जो अपनी सुन्दरता के लिये प्रसिद्ध थी अपना रूप रङ्ग खोकर कुरूप और कुष्ठी हो गई।

चौथे महीने की अन्तिम रात्री का बीतना था कि प्रातः काल ही महेन्द्रसिंह रतिसुन्दरी के कमरे में आया। कमरे में पाँव रखते ही दुर्गन्ध से उसकी नाक भरगई। रतिसुन्दरी के बिगड़े हुये शरीर को देख कर घबरा गया। उसने अपने मन के भाव को बहुत दबाना चाहा परन्तु सारी पहलवानी भूल गया। सती के विचार का सामना बल से नहीं किया जा सकता। रतिसुन्दरी पृथ्वी पर बैठी हुई है। शरीर से लुहू और पीप निकल रहा है। आँखें धँसी हुई, गाल चिपके हुये, और बाल बिखरे हुये हैं। राजा ने सोचा यह रतिसुन्दरी है या कोई और है! कुछ देर तक उसको देखता रहा फिर पूछा, "क्या तू रतिसुन्दरी है?" उसने कहा, "हाँ! क्या इसमें भी सन्देह है? मेरा रूप देख! मेरी यह दशा तेरे कारण हुई है। तू पापी है। तेरे विचार बुरे हैं। तू मनुष्यता और धर्म्म से पतित होगया है। तूने मेरा पति-व्रत धर्म्म भङ्ग करना चाहा। देख तेरे कारण इसका क्या रूप हो गया। जिस मुख की आभा को देखकर पूर्णिमा का चाँद लज्जित होता था आज उसी पर सैकड़ों मक्खियाँ भिन भिना रही हैं! क्या तू अब भी न मानेगा? और फिर भी कामातुर बना

रहेगा ?" राजा भय से काँपने लगा। उसके मन में वैराग उत्पन्न हो गया। हाथ बाँध कर अपने अपराध के लिये क्षमा माँगने लगा और बोला, "मैं तुझको ऐसा नहीं समझता था। जा मैंने तेरा विचार अपने मन से दूर कर दिया मेरी शक्ति से बाहर है कि तुझको फिर सुन्दर बना सकूँ। शोक के साथ तुझको तेरे पति के ।स लौटा देता हूँ। इस घटना को मैं अपने हृदय से कभी भुला न सकूँगा। इसका प्रमाण यह है कि सबसे पहिला काम मेरा यह होगा कि मैं जैन धर्म्म को ग्रहण कर लूँगा जिसके प्रताप से पुरुष और स्त्रियों में ऐसे रत्न पैदा होते हैं।"

रति सुन्दरी आदर सत्कार के साथ नन्दन नगर चली आई। चन्द्र ने उसका रूप देखा और उसी के मुँह से सारा हाल सुना "शासन देवी" के व्रत धारण करने का भी परिणाम देख लिया। वह महा दुखी होकर पछताने लगा। रतिसुन्दरी ने कहा, "प्राण पति ! आप घबरायें नहीं, जिस व्रत के धारण करने से कुरूप हो गई हूँ उसी व्रत के प्रताप और शासन देवी की कृपा से फिर रूपवती और सुन्दरी हो जाऊँगी और आपकी सेवा के योग्य बनूँगी। केवल एक दो महीने के लिये मुझ को फिर तप करने की आज्ञा दीजिये जिससे मैं कुरूपता के विचार को सुन्दरता के ध्यान से पराजित कर लूँ।" उसने ऐसा ही किया और देखो दो महीने के बीतने पर फिर वही रतिसुन्दरी सुन्दर कोमल और रूपवती बन गई। दोनों सुख और आनन्द से रहने लगे।

—*दोहा*—

जैसे उनके दिन फिरे, पाया भोग विलास।
वैसे ही सब हों सुखी, ईश चरण विश्वास॥

सती कलावती

—(१)—

देवशाल नाम का एक नगर था। वहाँ राजा विजयसेन राज करता था। उसकी रानी श्रीमती साक्षात् सौन्दर्य थी। उसके गर्भ से एक कन्या उत्पन्न हुई जो पृथ्वी पर चाँद का टुकड़ा थी। जो कोई देखता था मोहित हो जाता था। जब बोलती थी मुंह से फूल झड़ते थे और जब मुस्कराती थी तो ऐसा प्रतीत होता था मानों कँवल की पङ्खड़ियाँ खिल रही हैं सारा शरीर सुडौल, नख से सिख तक सुन्दरता के साँचे में ढली हुई। उसके जन्म लेते ही राजमहल का दुख दर्द दूर हो गया। सब उसे सच्चे हृदय से प्यार करने लगे। राजा ने रानी से पूछा, "इसका क्या नाम रखना चाहिये ?" बोली, "इसका नाम कलावती होगा।" परन्तु राजा को यह नाम नहीं भाया। वह कुछ और ही नाम सोचने विचारने लगा। रानी ने कहा, "मैं चाहती हूँ कि मेरी पुत्री "कला कौशल" हो और उसके शरीर से देश में कला कौशल का प्रचार और उसकी पूर्ण उन्नति हो। यथा नामः तथा गुणः। जैसा नाम होता है वैसे ही गुण मनुष्य में आप ही आप प्रगट होते हैं। लड़की को मां बाप के घर रहना नहीं है। यह जहां जायेगी, जिस राज की रानी होगी वहां अपना काम करेगी। उस राज्य की प्रजा इससे सुखी रहेगी। इसलिये मैंने इसी नाम को अच्छा समझा है। बहुत दिनों से मेरी यह अभिलाषा भी थी कि मेरी यह सन्तान कला कौशल की उन्नति में सहायक हो। अब मुझको पूरा पूरा विश्वास है कि वह ऐसी ही निकलेगी।" राजा चुप हो गया। उसकी रानी बड़ी ही बुद्धिमान थी इसलिये राजा ने अधिक रोक टोक नहीं की। बड़े ही लाड़ प्यार से उसका पालन पोषण होने लगा।

पढ़ाने लिखाने के लिये कई अध्यापिकायें नियत थीं। प्राकृत भाषा की वह पूर्ण पण्डिता हो गई। यहाँ तक कि जैन धर्म के

समस्त शास्त्र, रामायण, महाभारत, सूत्र और इतिहास इत्यादि का पूर्ण ज्ञान हो गया, परन्तु चित्र खींचने और मूर्ति गढ़ने के काम से उसे विशेष प्रेम था। उसके समय का अधिकांश इसी काम में व्यतीत होता था। राजा रानी दोनों उसके काम को देखकर बहुत ही प्रसन्न होते थे। देवशाल नगर में जितने मन्दिर थे सब में उसने अपने हाथ की बनाई हुई मूर्त्तियां भेजी थीं।

कलावती अब सोलह वर्ष की हो गई। उसका मुख पूर्णिमा के चांद के सदृश प्रकाशवान था। देखने वाले दांतों उँगली दबाते थे। जो उसकी ओर दृष्टि करता था टक टक देखता रह जाता था। राजा रानी दोनों को उसके विवाह की चिन्ता हुई परन्तु आस पास के राजकुमारों में उस जैसा रूपवान कोई नहीं मिलता था। माता पिता चाहते थे कि वर भी वैसा ही रूपवान और सुन्दर हो जैसी कि कन्या है। बहुत दिनों तक देख भाल होती रही परन्तु इच्छानुसार कोई सुयोग्य वर नहीं मिला।

वह रात दिन इसी चिन्ता में रहते थे। देश देश के राजाओं के पास अपना पुरोहित भेजा। वह सबका चित्र ले आया परन्तु राजा रानी ने किसी को भी पसन्द नहीं किया और अब वह निराश से होने लगे।

एक दिन रानी ने अपनी लड़की से कहा, "तू जैसी सुन्दरी है जान पड़ता है वैसा वर ब्रह्मा ने संसार में उत्पन्न नहीं किया। इतना खोजने परभी कहीं अच्छा वर नहीं मिलता।" कलावती हंसी, "माता जी! सुन्दरता कई प्रकार की होती है। किसी का शरीर सुन्दर है। किसी का मन और हृदय सुन्दर है। किसी की बुद्धि सुन्दर है आपको कौन सी सुन्दरता चाहिये?" माता बोली, "जिसका शरीर मन बुद्धि सब कुछ सुन्दर हो।" कलावती सोच विचार में पड़ गई थोड़ी देर पीछे कहने लगी, "शरीर की सुन्दरता ही सब कुछ नहीं है। बाहिर मुखी मनुष्य इसी को सब कुछ

समझते हैं। यह उनकी भूल है। हां! मन बुद्धि और हृदय का सुन्दर होना आवश्यक है। जिसका मन और बुद्धि विचार सुन्दर है वह बहुत ही सभ्य, सुशील, बुद्धिमान विद्वान और गुणवान होता है और वह अपने शरीर को भी सुन्दर बना लेता है। जिसका मन बुद्धि और हृदय कुरूप, मलीन, और भद्दा होता है उसका शरीर चाहे कितना ही सुन्दर क्यों न हो परंतु उसकी कुरूपता, मलीनता और भद्दे पन की झलक शरीर पर पड़ती है वह देखने में भद्दा, कुरूप और मलीन प्रतीत होने लगता है। माता जी! तुम देखो! संसार में जितने रोग हैं वह सब के सब मन ही से उत्पन्न होकर दुख और शोक के कारण होते हैं। तीन प्रकार के दुख केवल मन की अपवित्रता, अशुद्धता और मलीनता से उत्पन्न होते हैं। इसलिये मनुष्य को मन और बुद्धि की सुन्दरता पर विशेष ध्यान देना चाहिये। केवल शरीर की सुन्दरता पर मरना भूल और भ्रम है।

माँ बुद्धिमान, विचारवान और पढ़ी लिखी थी परन्तु लड़की की बात सुनकर दंग रह गई। उसने सोचा—"कलावती सयानी हो गई और वह चाहती है कि किसी न किसी के साथ उसका विवाह शीघ्र कर दिया जावे।" बात क्या थी और क्या समझी गई! देखो! इस संसार में ऐसे लोग वास्तव में बहुत कम होते हैं जो कहने वाले के सच्चे और यथार्थ भाव की समझ रखते हैं। यही कारण है कि बहुधा मुनि गण चुप रहते हैं।

माँ को सोच विचार में पाकर कलावती बोली, माता जी! आप सोच में क्यों पड़ी हैं? इस सोच विचार का परिणाम क्या है? जिसने मुझे जन्म दिया है उसने मेरे जैसा वर भी उत्पन्न किया होगा! प्रकृति पुरुष की जायदाद है। कोई जायदाद बिना मालिक के नहीं रह सकती। यह प्राकृतिक नियम है। हाँ! समय से पहिले कोई काम नहीं होता।"

रानी ने कहा, "तू बड़ी ज्ञानी है। मैं सीधी सादी और भोली भाली हूँ। मेरी दृष्टि अपने धर्म्म की ओर है। मैं आज राजा से चलकर कहूँगी कि अब कलावती सयानी हो गई। उसका विवाह शीघ्र ही कर दो। देर न लगाओ। समय व्यर्थ नष्ट हो रहा है। यदि कोई उस जैसा रूपवान और सुन्दर नहीं मिलता तो किसी बुद्धिमान, शूरवीर साहसी और पराक्रमी राजपूत के साथ उसका विवाह कर दिया जाये। कलावती का भी स्वयं ऐसा विचार है।" यह सुनकर कलावती लजा गई। उसने फिर अपनी माँ से कहा, मेरे चार प्रश्न हैं। जो कोई उनका उत्तर देगा मैं केवल उसी के साथ विवाह करूँगी।"

रानी ने जाकर राजा को सारी बातें सुना दीं।

—×(२)×—

राजा विजयसेन का एक लड़का था जिसका नाम जयसेन है। यह बड़ा उत्साही, पुरुषार्थी, पराक्रमी, रूपवान और पवित्रात्मा था। और अन्य देशों में जाने का बड़ा ही प्रेमी था। यह अपनी बहिन को बहुत ही प्यार करता था और उसे सदैव प्रसन्न चित्त रखता था। एक दिन वह किसी मन्दिर में दर्शन करने गया था एक पथिक को देखा जो एकाग्रता के साथ ध्यान जमाये हुये उन मूर्तियों को देख रहा था जो कलावती ने अपने हाथ से गढ़ी थीं। हिंदू इन्जीनियरी और कला कौशल के कामों से विशेष प्रेम नहीं रखते थे और न वह इधर ध्यान ही देते थे। यह जो कुछ तुम देखते हो जैनियों और बौद्धों की बुद्धि की विलक्षणता और उपज हैं। अब भी जैनी जितना धन द्रव्य अपने मन्दिरों के सुन्दर बनाने और उसके सजाने में लगा देते हैं हिंदू उसका सौवाँ भाग नहीं कर सकते। उनमें इनमें आकाश पाताल का भेद है। बची खुची जो पुरानी इमारतें और सुन्दर २ मन्दिर रह गये हैं वह सब इन्हीं की कारीगरी के नमूने हैं। आबू पर्वत का मन्दिर देखो जो न

केवल भारतवर्ष में किन्तु सारे संसारमें अपने रङ्ग ढङ्ग का निराला और अद्वितीय है। राँची का स्तम्भ,हस्ती द्वीप (यलिफैंनटा आइल) की गुफा, शिव भगवान की बड़ी २ मूर्तियाँ, बनारस के सारनाथ का विशाल स्तम्भ, बुद्धगया का आश्चर्य जनक और विलक्षण मन्दिर इत्यादि सब इनके कला कौशल के प्रेम को स्मरण कराते रहते हैं। बहुतों का तो यह विचार है कि जगन्नाथपुरी का मन्दिर भी बौद्धों का है जो अब वैष्णवों के हाथ आ गया है। इन्जीनियरी के काम में जो भारतवर्ष का नाम जगत् विख्यात है उसका मुख्य कारण जैनियों और बौद्धों की अपूर्व कारीगरी है। जयसेन ने उस पथिक की एकाग्रता को देखकर पूछा, "तुम दत्त चित्त होकर इतने ध्यान से मूर्त्तियों को क्यों देख रहे हो ?" वह बोला, यह सब किसी अच्छे कारीगर के हाथ की बनाई हुई है। इनके देखने से पता लगता है कि वह मन की पवित्रता, सुन्दरता, निर्मलता शुद्धता और बुद्धिमानी की दृष्टि से अद्वितीय है। यही कारण है कि मैं इनको ध्यान से देख रहा हूँ।"

अभी बात चीत हो रही थी कि मन्दिर में किसी छुपे हुये साँप ने जयसेन के पांव को डस लिया। विष सारे शरीर में फैल गया और वह मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। देखने में वह मृतक तुल्य प्रतीत होने लगा। नाड़ी बन्द हो गई। आंखें पथरा गईं मन्दिर के पुजारी इत्यादि सब घबरा गये। राजा रानी को भी इस घटना की सूचना मिली। सब आये। राजकुमार की अकाल मृत्यु पर विलाप करने लगे। इस पथिक ने कहा, "घबराओ नहीं ! मैं इसको अभी अच्छा किये देता हूँ। इसे उठाकर बाहर ले चलो। यहां दम घुटता है।"

राजकुमार की लाश बाहर निकाली गई। नगर में कोलाहल मच गया। हज़ारों मनुष्य देखने को टूट पड़े क्योंकि जयसेन वहां के राजा का इकलौता लड़का था। चारों ओर रोना पीटना मच

गया। यों तो पथिक ने सब को दिलासा दिया था परन्तु सांप बड़ा ही विषधर था। किसी को भी आशा नहीं थी कि राजकुमार अब फिर जी सकेगा। इतनी भीड़ भाड़ में केवल एक यही पथिक रह गया था जो शान्त चित्त दिखलाई देता था। और सब के सब घबराये हुये थे।

इसने अपनी झोली खोली। इसमें से * ज़हमुहरा निकाल कर साँप ने जहाँ काटा था लगा दिया। नीम के पत्तों का पंखा झलने लगा। पंद्रह मिनट पीछे जयसेन ने आँखें खोल दीं, देखा कि उसके चारों ओर हज़ारों मनुष्य एकत्रित हैं। पूछा, "यहाँ भीड़ क्यों ल गी हुई है ?" जब उसने सब बातें सुनीं सबसे पहिले उठकर उस पथिक को प्रेम के साथ छाती से लगाया जिसने उसकी प्राण रक्षा की थी। राजा रानी और सारी प्रजा ने उत्सव मनाया। राजकुमार पथिक को साथ लिये राज भवन में आया जहां उसका बड़ा ही आदर सत्कार किया गया। वह पथिक कुछ दिनों वहीं ठहरा रहा।

जयसेन ने उसे कलावती से मिलाया और जब राजकुमारी ने देखा कि मूर्ति बनाने और चित्रकारी के काम में वह निपुण है तो बहुत ही प्रसन्न हुई। वह इन विषयों में अपने में कुछ त्रुटि पाती थी इसलिये उसने इस पथिक से बहुत सी बातें सीख लीं।

इस पथिक का नाम दत्त था। वह शङ्खपुर के राजा का दरबारी था जिसका नाम शङ्ख था। वह बहुत दिनों से अति सुन्दर और मनोहर चित्र बनाने की धुन में था। इसी खोज में वह देश विदेश घूमता फिरता हुआ देवशाल नगर में आया जहाँ उस की मनोकामना पूर्ण हुई क्योंकि उसने कलावती के रूप में अपने

* एक दवा है जो साँप या बिच्छू के काटने के स्थान पर लगाई जाती है।

मानसिक आदर्श का दर्शन पा लिया। उसने धीरे २ उसका चित्र खींच लिया और राजा विजयसेन से बहुत कुछ पारितोषिक पाकर अपने देश को लौट गया।

—❀ (३) ❀—

जब दत्तशङ्खपुर में पहुँचा और राजा को उसके आने की सूचना मिली उसने उसे बुलवा भेजा। यह आज्ञानुसार राज दरबार में पहुंचा। राज सिंहासन के ; ककर नमस्कार किया और आज्ञा पाकर एक उचित स्थान पर बैठ गया। साधारण बात चीत के पीछे राजा ने पूछा, "दत्त! मैंने सुना है तू पृथ्वी की परिक्रमा करने गया था। क्या अनोखी और विलक्षण बात देखी है? मुझे भी बता।" दत्त बोला, "पृथ्वीनाथ! मैं व्योपार के लिये देवसाल नगर में गया था। आप से क्या बताऊँ क्या देखा! वहाँ की राजकुमारी बड़ी ही रूपवती है। वह साक्षात् सौन्दर्य्य की देवी है। इतना ही नहीं किन्तु वह बड़ी सुशीला, पवित्रात्मा और धर्मात्मा है। ऐसे लोग संसार में हज़ारों वर्ष पीछे कभी जन्म लेते हैं। उसके समस्त गुणों का वर्णन करना कठिन ही नहीं किन्तु असम्भव है।"

शङ्ख ने कहा, "दत्त! तू कवि है। कवियों की बातें अलङ्कार रूप में हुआ करती हैं। यह आकाश पाताल को एक कर देते हैं। उसके अनुपम सौन्दर्य्य का कोई प्रमाण भी तेरे पास है या नहीं?" दत्त ने उसका चित्र निकाल कर राजा को दिखाया। वह देखते ही दंग रह गया। देर तक कोई बात चीत नहीं की। फिर सँभल कर दत्त से पूछा, "यह कुंवारी है या विवाहिता?" दत्त ने उत्तर दिया, "अभी तक उसका विवाह नहीं हुआ। राजा रानी इसी खोज में हैं कि उस जैसा कोई सुयोग्य वर मिले तो विवाह कर दिया जाये परन्तु ऐसा रूपवान वर मिलना कठिन है क्योंकि ब्रह्मा ने उसके बनाने में अपनी सारी योग्यता लगा । लड़की

बाहिरी रूप रंग को मुख्य नहीं समझती। उसके चार प्रश्न हैं। जो कोई उन प्रश्नों का उत्तर देगा वह उसी के साथ विवाह करेगी शङ्ख ने पूछा, "तू राज भवन में कैसे चला गया था।" तब उसने जयसेन के साँप के काटने की घटना कह सुनाई और साथ ही यह भी कहा कि "जहाँ यह लड़की इतनी रूपवती और गुणवान है साथ ही पण्डिता और कला कौशल में भी पूर्ण है चित्र ऐसा अच्छा खींचती है कि चित्रकार भी देखकर दंग रह जाते हैं। नगर के सारे जैनी मन्दिरों में उसी के हाथ की बनाई हुई मूर्तियाँ सब जगह रक्खी हुई हैं। वह अपना सारा समय धर्म्म पुस्तकों के पढ़ने या मूर्त्तियों के बनाने में व्यतीत करती है।"

शङ्ख के मन में प्रबल इच्छा हुई कि किसी युक्ति से लड़की को देखना चाहिये। दत्त ने कहा, "राजन्! देखना कैसा? तुम उसके प्रश्नों का उत्तर दो और उसको ब्याह लाओ।"

शङ्ख—"परन्तु यह बात सहज नहीं है। क्या जाने वह क्या पूछ बैठे! मुझ से उत्तर न बन आवे और उलटे मुझे लज्जित होना पड़े।"

दत्त—"बात तो ऐसी ही है परन्तु पुरुषार्थ अपना धर्म्म है।"

शङ्ख—"फिर कौन सी युक्ति की जाये?"

दत्त—"सुनिये महाराज! बिना तप के मान मिलता है न प्रतिष्ठा मिलती है। न विद्या आती है न ज्ञान प्राप्त होता है और फिर ऐसी लक्ष्मी तो तप के बिना किसी को किसी प्रकार मिल ही नहीं सकती।"

शङ्ख—"मैं कौन सा तप करूँ?"

दत्त—"आप जैन धर्म्म के अनुसार ब्रह्मचर्य्य का पालन करें और साथ ही सरस्वती देवी की आराधना कीजिये। इससे आप का मन पवित्र, बुद्धि निर्मल और अन्तःकरण शुद्ध हो जायेंगे जिस समय कलावती आप से प्रश्न करेगी उसके मानसिक भाव

का प्रतिविम्ब आप ही आप के हृदय पर पड़ेगा और वाग देवी की कृपा से आप उसका उत्तर अवश्य दे सकेंगे। मूर्ख और अन-समझ मनुष्य तप की महिमा को नहीं जानते परन्तु आप जैनी हैं। जैन धर्म्म संसार का प्राकृतिक धर्म्म है और पूर्ण है। उसमें कोई बात ऐसी नहीं है जो असत्य या सिद्धान्त विरुद्ध हो। यह दूसरी बात है कि अनाड़ियों को उसकी समझ न आवे और वह अनु-चित आक्षेप कर बैठें। यह आर्य धर्म है और सब से श्रेष्ठ है। ऋषभदेव जी से लेकर महावीर स्वामी और दूसरे जिनों जिने-श्वरों ने तप किया था। तप करने से वह फटक शिला पर पहुँचे। ईश्वर होगये। कौन सी बात है जो तप से नहीं मिलती ? तप के लिये कुछ भी दुर्लभ नहीं है। तप ही धर्म है। तप ही कर्म है। तप ही ज्ञान, ध्यान, योग और व्रत है। शेष ने तप के बल से अपने सर पर सृष्टि का भार धारण कर रक्खा है। तप ही से ब्रह्मा जगत् को रचता है। आपको भी इस संसार में सारे पुरु-षार्थ का फल तप ही से मिला है। तप ही परम पुरुषार्थ है।"

शङ्ख—"दत्त ! तू सच कहता है। मैं तप करूँगा और सरस्वती मेरी मनोकामना पूर्ण करेगी।"

तप की व्याख्या बहुत बड़ी है। इसलिये उसे छोड़कर हम केवल इतना ही कहना चाहते हैं कि शङ्ख ने तप किया और व्रत के समाप्त होने पर देवशाल नगर में दत्त के साथ जाने के लिये निश्चय कर लिया।

अब तक राजकुमारी का विवाह नहीं हुआ था। कोई उसके प्रश्नों का उत्तर देने वाला नहीं आया। माता पिता दिन रात सोच विचार में रहा करते थे। हार मान कर विजय सेन ने लड़की का स्वयंवर रचा। देश देश के राजे आये। सब के रहने के लिये उचित स्थान दिया गया और उनके भोजनादि का उत्तमोत्तम प्रबन्ध किया गया।

दत्त उन प्रश्नों को पहिले से जानता रहा होगा। उसने अपनी कारीगरी से एक सन्दूक बनाया। उसके भीतर चार पुतलियाँ लगाईं और शंख राजा को समझा दिया कि तुम्हें बोलने की आवश्यकता नहीं है, केवल कल को घुमा देना पुतलियां बारी बारी पर सन्दूक से निकालकर आप उत्तर दे लेंगी। शंख को दत्त पर पूरा पूरा भरोसा था और वह इसी विश्वास पर देवशाल नगर में आ गया।

मण्डप सजा हुआ है। मचानों पर राजे महाराजे विराजमान हैं। कलावती हाथ में जयमाल लिये हुये इधर उधर एक बार चक्कर लगा आई परन्तु कोई भी उसकी आंखों में नहीं जँचा। शंख दत्त के साथ एक जगह बैठा हुआ था। राजकुमारी ने दत्त को पहिंचान लिया, वह मुसकराई क्योंकि उसने भेष बदल रक्खा था।

तत्पश्चात् कलावती की आज्ञा पाकर एक प्रतिहारी उठा और उसने ऊँचे स्वर में सबको सुना कर कहा:—

'प्रतिष्ठित महाशयो! महाराज देवशाल सच्चे प्रेम के साथ आप सबको धन्यवाद देते हैं। धन्य है आज की घड़ी कि आपने कृपा करके मण्डप को सुशोभित किया है क्योंकि ऐसे उत्सव नित्य नहीं हुआ करते। इस स्वयंवर में राजकुमारी अपने लिये वर नहीं चुनेगी किन्तु उसने प्रण किया है कि जो मनुष्य उसके चार प्रश्नों का उत्तर देगा वही उससे विवाह करने का अधिकारी होगा। आप लोगों ने देख लिया। कलावती इस भूमण्डल की चांद है। उस जैसी सुन्दरी और रूपवती कन्या इस संसार में नहीं है। इसके अतिरिक्त वह गुण, कर्म्म और स्वभाव की दृष्टि से भी अद्वितीय है। सच्चे अर्थ में वह साक्षात् सौन्दर्य की देवी है। जो कोई इस अमूल्य रत्न को पायेगा जीवन पर्यन्त अपने सौभाग्य को सराहता रहेगा। उसके चार प्रश्न हैं। जो उनका यथार्थ

उत्तर देगा। वही उसका पति होगा। प्रश्न यह हैं—(१) देव कौन है ? (२) गुरू कौन है ? (३) तत्व क्या है ? और (४) सत्व क्या है ? आप में से जो उत्तर देने की योग्यता और साहस रखता हो वह सामने आये और इनका यथार्थ उत्तर दे। वही कलावती का पति होगा।"

कई राजों ने ऊटपटाँग उत्तर दिए परन्तु कलावती के लिए वह उत्तर सन्तोषजनक नहीं थे। सब के सब एक दूसरे का मुँह ताकने लगे। सभा में सन्नाटा छा गया। सूई भी गिरती तो उसका शब्द अवश्य सुनाई देता। यह दशा देख कर फिर प्रतिहारी ने कहा, 'सज्जनो ! यह चुपकी कैसी ? जिसको साहस हो वह बेधड़क उत्तर दे। यहां जाति पाँत का आडम्बर नहीं है क्योंकि जैनधर्म इसे कुछ भी मुख्यता नहीं देता। जो उत्तर देना चाहे आगे आजावे और अपने भाग्य की परीक्षा ले।' इतना कहने पर भी सब के सब बैठे ही रहे।

तब दत्त ने शङ्ख की ओर देखा। वह बड़े बाँकेपन के साथ अपने मचान से उठा। दत्त ने उसके सन्दूक को उठा कर बीच सभा में रख दिया। राजाशङ्ख सबको सम्बोधन करके बोला, "कलावती आप अपने मुख से प्रश्न करे। इस कला की सन्दूक में से जो यहाँ रक्खी हुई है पुतलियाँ निकल कर उसके प्रश्नों का यथार्थ उत्तर देंगी।" सब इस बात को सुनकर दंग रह गये। भरी सभा में राजकुमारियों के बोलने का रिवाज नहीं था। कलावती झिझकी और ठठकी। कोई और उत्तर देने के लिये उद्यत नहीं था इसलिये विजयसेन और श्रीमती ने कहा, "बेटी ! यह लज्जा की बात नहीं है। तू प्रश्न कर।" वह भी बीच सभा में आगई।

कलावती—"देव क्या हैं बता पुतली ?"

एक पुतली (सन्दूक से निकल कर) 'वैत्तराग उसको

बोलते हैं सखी।"

कलावती–"हैं गुरु कौन तू बता दे आज ?"

दूसरी पुतली–(निकल कर) "जिसने साजे है धर्म कर्म के साज।"

कलावती–"तत्त्व क्या वस्तु है बता प्यारी ?"

"तीसरी पुतली–(निकल कर) हिंसा से बच के रहना ऐ आली !"

कलावती–"और परम तत्व की कहानी सुना ?"

चौथी पुतली–(निकल कर) "इन्द्रियों के दमन का तप वह हुआ।"

सब दंग ! किसी की समझ में कोई बात नहीं आई। भानमती के पिटारे का जादू देखकर सब चकित थे आज तक कभी ऐसा स्वयंवर न आंखों देखा न कानों सुना। जादूगर का खेल है या क्या है ? पुतलियाँ राजकुमारी के शब्द पर शङ्ख के सन्दूक में हाथ लगाते ही नाचती, कूदती, फुदकती और गाती हुई बाहर आती हैं और उत्तर देकर फिर सन्दूक में समा जाती हैं 'बैत्तराग देव है। जो महा व्रत धारण करे वह 'गुरू' है। सब पर दया रखना, जीव धर्म का पालन करना और हिंसा से बचना यह 'तत्त्व' है। अपने आपको वश में रखना, इन्द्रियों पर अधिकार पाना, संसारी विषय भोग का त्याग करना बुरी वासनाओं का पराजित करना यह 'सत्त्व' है। यह जैन धर्म के चार मुख्य सिद्धान्त हैं। जो इनको समझ ले वही जैनी है। "जिन" शब्द का अर्थ है—'इन्द्रियों को जीतना।' जो इन्द्री जीत है वही जिन है और जैनी है और जिसमें यह गुण नहीं हैं हम उसको जैनी नहीं कहते। संसार भले ही कहा करे। मूर्खा और अनसमझों ने जैन धर्म का आदर्श नहीं समझा। यह बिना समझे बूझे आक्षेप करते रहते हैं। विवेकी और विचारवान मनुष्य को

चाहिये कि वह केवल सिद्धान्त पर दृष्टि रक्खे और इस दृष्टि से जिन धर्म संसार का बहुत बड़ा सुधारक और सच्चा धर्म प्रचारक है। जिसने इन चार बातों को समझ लिया और उनको अपने जीवन का अङ्ग सङ्ग बना लिया वही जिनेश्वर और महा मुनि ऋषभदेव का अनुयायी, महा तपस्वी पार्श्वनाथ का शिष्य और महा ज्ञानी और महर्षि महावीर स्वामी का सच्चा नाम लेवा है।

राजा और रानी के मनकी कली खिल गई। जयसेन, दत्त और सारे नगर निवासी प्रसन्न हो गये। शंख ने अपने तपस्या का फल पा लिया। कलावती का हृदय प्रेम से पूर्ण था। वह मन्द मन्द मुस्कराती और हंस की चाल चलती हुई शंख के सामने पहुँची और उसके गले में जयमाल डाल दी।

चारों ओर आनन्द ही आनन्द था। दोनों का विवाह हो गया। सारे नगर में चहल पहल और धूम धाम थी। और राजों और महाराजों की मनोकामना पूर्ण नहीं हुई परन्तु फिर भी वह प्रसन्न थे क्यों उनकी दृष्टि में शंख ही इस राज कन्या के लिये सुयोग्य वर था। यह विवाह सबके लिये आनन्द दायक था। सब राजारानी और दुल्हा दुल्हिन को बधाई देने लगे। ससुराल में कुछ दिन रह कर शंख अपनी नई नवेली दुलहिन के साथ अपने नगर में लौट आया। वहाँ दोनों सुख सम्पन्न जीवन व्यतीत करने लगे। राजा ने दत्त को अपना मन्त्री बनाया परन्तु उसने इस पदवी को ग्रहण करते समय कह दिया कि जब उसका जी चाहेगा वह घूमने फिरने के लिये देश विदेश चला जायेगा।

—(५)—

सूर्य और चन्द्रमां का मिलाप हो गया। पति की राजधानी में पहुँच कर कलावती ने कलाकौशल के बहुत से पाठशाले खोल दिये। इन सबकी देख भाल और उचित प्रबन्ध के लिये दत्त नियत किया गया। रानी ने कई विहार भी बनवाये जिनमें

भिक्षु और भिक्षुनियाँ पढ़ा करती थीं। दुखी और रोग ग्रसित मनुष्यों और पशुओं के लिये बहुत से औषधालय भी जगह जगह खुल गये। नये नये धर्म्म शाले, मन्दिर, पुल, तालाब कुयें और सड़कें भी बन गईं शंखपुर की उन्नति दिन दूनी और रात चौगुनी होती गई।

एक दिन रानी ने राजा से कहा, "महाराज ! आज रात को मैंने विचित्र स्वप्न देखा है। कोई बात समझ में नहीं आती।" राजा ने पूछा, "वह क्या है ?" रानी बोली, "मैं सो रही थी। देवता आकाश मण्डल से उतरे और एक अमृत का घड़ा मुझको देकर कहने लगे—ऐ रानी ! इस घड़े में अमृत भरा है जिससे तुझको और तेरे पति को अमर पद प्राप्त होगा और तुम दोनों का नाम बहुत दिनों तक संसार में प्रसिद्ध रहेगा।" राजा मुस्कराया "मैं समझ गया। तुम गर्भवती हो गई हो तुम्हारे पेट से कोई महा तेजस्वी पुत्र उत्पन्न होगा। ऐ रानी ! मुझे भी बहुत दिनों से यही अभिलाषा थी। आज इस समाचार को सुनकर मेरा मन प्रफुल्लित होगया। वह शुभ घड़ी आये कि मेरी मनोकामना पूरी हो।" रानी ने कहा, "महाराज ! मैं तो सुना करती थी कि केवल स्त्रियों ही को पुत्र की इच्छा होती है परन्तु यहां उल्टी बात दिखलाई देती है। मैं धर्म्म को अपना पुत्र समझती हूँ और उसी को पालती रहती हूँ। आप उसके विरुद्ध पुत्र की इतनी लालसा रखते हैं। धर्म्म ही संसार में सब कुछ है। धर्म्म न हो तो कुछ भी नहीं।"

रानी की बातें सुनकर राजा लज्जित होगया परन्तु अपने मन में बहुत ही प्रसन्न हुआ कि उसकी रानी बड़ी धर्मात्मा और विचार शील है।

—❀ (६) ❀—

संसार में किसी बात का ठिकाना नहीं। यह संसार समुद्र

है जिसमें ज्वार भाटे सदैव उठा करते हैं। लहरें कभी ऊपर जाती हैं कभी नीचे। ठीक यही दशा मनुष्य के चित्त की भी है। कभी प्रसन्न है कभी अप्रसन्न! प्रेम घृणा, राग द्वेष साथ साथ चलते हैं। आज जो दशा है सम्भव है कल वह न रहे। कल जो अवस्था होगी सम्भव है परसों न रहे। ऐसी दशा में कौन इसका विश्वास करे! और कैसे करे!

जयसेन को कई महीने पीछे अपनी बहिन से मिलने का ध्यान आया। उसने माता श्रीमती से अपना विचार प्रगट किया। वह स्वयं बहिन के पास जाना चाहता था परन्तु मां बाप ने रोक दिया। राजा ने अपने कई विश्वास पात्र मनुष्यों को शंखपुर में भेजा। उन्होंने यहां आकर राजा शंख से प्रार्थना की कि 'कलावती को उसके मां बाप और भाई देखना चाहते हैं। आप कुछ दिनों के लिए उसे बिदा कर दीजिये।' परन्तु शंख ने इनकार कर दिया। वह नहीं चाहता था कि रानी उसकी आंखों से ओझल हो। हार मान कर वह सब लोग लौट गये।

जयसेन ने अपनी बहिन के लिए दो बहुमूल्य साड़ियां बनवाई थीं जिनको उसने उन्हीं लोगों के हाथ कलावती के पास भेजा। साड़ियां बहुत ही अच्छी थीं और उसमें जगह जगह बेल बूटों के रूप में जयसेन का नाम लिखा हुआ था इन्हें पाकर वह बहुत ही प्रसन्न हुई और नहा धोकर एक साड़ी पहिन ली। अपने सामने दर्पण रखकर सखियों से कहने लगी, 'इस साड़ी से सच्चे प्रेम की बू बास आती है। जिसने इसको भेजा है वह मुझे मन से प्यारा है और वह मुझको भी सच्चे हृदय से प्यार करता है। यही कारण है कि यह मेरे मन को बहुत भाती है।" होने वाली बात होकर रहती है। राजा शङ्ख भी उस समय रानी के महल की ओर आ रहा था। उसने सारी बातें सुन लीं। मन में कहने लगा, 'आहा! कलावती किसी और को भी प्यार करती

है। वह इसको मन से प्यारा है और यह भी उसको प्यारी है। उसका प्रेम मेरे साथ झूटा और बनावटी है। रानी अब इस योग्य नहीं रही कि उसको महल में रक्खा जाये। यही उत्तम है कि मैं उसे देश से निकाल दूँ।' ईर्षा की अग्नि महा प्रचण्ड होती है। यह बुद्धि को जलाकर राख कर देती है। मनुष्य अपना बुरा भला नहीं सोच सकता और भूल भ्रम में पड़ कर अनुचित कर्म कर बैठता है जिसके लिए उसको पछताना पड़ता है। वह उल्टे पांव लौट आया। उसने सोचा—'अधिक प्रमाण की क्या आवश्यकता है! मैंने रानी के मुख से उसके घृणित कर्म को सुन लिया। अब पूछना गछना व्यर्थ है। इससे मेरी और भी बद-नामी होगी।' दिन भर वह इसी सोच विचार में पड़ा रहा। रात हुई। उसने एक चण्डाल (जल्लाद) को बुला कर हुक्म दिया 'रानी को ले जाकर उसके दोनों हाथों को काट दो और जङ्गल में छोड़ आओ। कटे हुए हाथ मेरे पास अवश्य लाना।'

रानी सो रही थी। उसे मूर्च्छित करने की दवा सुँघा दी गई। जल्लाद (चण्डाल) उठाकर उसको जंगल में ले गया। ठण्डी ठण्डी वायु के लगने से रानी की मूर्च्छा जाती रही। उसने अपने आपको राज भवन से बाहिर पाकर चण्डाल से पूछा, "मैं यहाँ कैसे आई?" उसने कहा, "मैं नहीं जानता। मुझे राजा ने हुक्म दिया है कि आप के दोनों हाथ काटकर उसके पास ले जाऊँ और आपको इसी भयानक जंगल में छोड़ दूँ।"

रानी सोचने लगी—"मैंने कौन सा अपराध किया है। जिसके लिये ऐसा हुक्म दिया गया है" परन्तु कोई बात समझ में नही आई। उसने चण्डाल से कहा, "बहुत अच्छा! राजा का हुक्म सर और आंखों पर! तुम मेरे हाथ काट लो। यह शरीर उसी का है और उसी के नाम पर अर्पण है। यदि वह इसी में प्रसन्न है तो मैं भी अपने आप को सौभाग्यवती समझती हूँ।"

रानी के सुन्दर सलोने रूप को देखकर चण्डाल के मन में दया आई। उसने डबडबाई आंखों से कहा, "महारानी ! मैं क्या करूँ ! मेरा कोई वश नहीं ! राजा का हुक्म ऐसा ही है। क्या करूँ ! क्या न करूँ ! कुछ समझ में नहीं आता।" रानी बोली, "तुम राजा के सेवक हो। अपना काम करो और चले जाओ। मुझ को यहीं छोड़ दो। जो मेरे कर्म्म में लिखा है वह अवश्य हो कर रहेगा। इससे कोई बचा नहीं सकता। ब्रह्मा ने जो ललाट में लिख दिया है वह भी उसको नहीं मेट सकता। मनुष्य की तो शक्ति ही क्या है ! कर्म्म भोग सब के लिये आवश्यक है।

* दोहा *

कर्म भोग भुगतै बनै यह जानैं सब कोय।
ज्ञानी भुगतै ज्ञान से, मूरख भुगतै रोय ॥"

रानी की बातें सुनकर चण्डाल का कलेजा फटने लगा। उसकी आंखों से टप टप आंसू गिरने लगे। उसने इधर उधर देखा। संयोग वश पास ही किसी सौदागर की लड़की मरी पड़ी थी। वह कैसे मरी या मारी गई इसका उसे पता नहीं था। चण्डाल ने हाथ बांधकर कहा, "माता ! मैं इसके हाथों को काट ले जाता हूँ। तू अपनी अँगूठी और कङ्गन इनमें डाल दे जिससे राजा को विश्वास हो जाये और वह मुझ पर क्रोध न करे। मैं तुझको यहां छोड़ जाता हूँ। मेरी सम्मति है कि तू भाग कर अपनी जान बचा ले।" रानी हँसी। इसमें उसने अपने अगले अच्छे कर्मों के अच्छे फल देखे। बोली, "बहुत अच्छा ! ऐसा ही करो।" और ऐसा ही किया गया।

जब कटे हुये हाथ राजा के पास पहुँचे उसे बड़ा ही दुःख हुआ वह अपनी भूल पर पश्चाताप करने लगा परन्तु होने वाली बात हो चुकी थी। उसने समझा अब रानी को जंगल के सिंह

और चीते खा जायेंगे या खा गये होंगे। बिना हाथ का मनुष्य अपनी रक्षा नहीं कर सकता। वह अपने मन से रानी के ध्यान को भुलाने लगा परन्तु कहना सहज और करना कठिन है। उसके अपार दुःख का वर्णन नहीं हो सकता।

—(७)—

रानी का पाँव भारी था। वह घने जंगल में चली गई। रात ज्यों त्यों कटी। प्रातःकाल उसके गर्भ से पुत्र उत्पन्न हुआ और रोने लगा। रानी ने उसकी ओर देखकर कहा, "बेटा! एक ही दिन की बात थी। कहीं तेरा जन्म कल बाप के घर में हुआ होता तो धूम धाम के साथ सारे राज में उत्सव मनाया जाता। तू ने आज जन्म लिया और देख! पालने की जगह तुझको पृथ्वी में जगह मिली है। कोई सेवा करने के लिये भी पास नहीं है। तेरा रोना उचित है परन्तु इस रोने धोने से होता क्या है? जो भाग्य में लिखा था वह आगे आया। तू भी धैर्य धर! मैं भी धैर्य धरती हूँ।"

रानी इस प्रकार बात कर रही थी मानो नन्हा बालक उसकी बात चीत को समझ रहा था। रानी और जंगल! जंगल में बच्चे का जन्म होना! जहाँ न कोई सेवक न सहायक! न खाने पीने की सामग्री! कैसी दुख भरी कहानी है! सोचने ही से रोंगटे खड़े होते हैं। मालिक ऐसा दिन शत्रु को भी न दिखाये। बच्चे का जन्म पव फटते ही हुआ था। रानी ने उसको दूध पिलाया और वृक्ष के नीचे पृथ्वी पर लिटा दिया। वह इस सोच में पड़ी कि यदि कहीं से फूस मिल जाये तो वह उसके लिये अच्छी सी जगह बना दे। दोपहर तक वह इसी काम में रही। कभी बच्चे को देखती, कभी अपनी ओर दृष्टि करती। कभी हँसती और कभी रो देती। वृक्ष के गिरे हुये सड़े गले फल जो मिले उनको खालिया और वृक्ष ही के नीचे फूस के बिछौने पर बच्चे के साथ लेट रही।

अभी बहुत देर नहीं हुई थी कि उधर एक यती (जैनी साधू) आ निकला। उसने वृक्ष के नीचे एक युवती को बच्चे के साथ लेटी हुई देखकर पूछा, "माई ! तू कौन है ?" रानी की आंख खुल गई। उसने कहा, 'मैं।" साधू बोला, "तू किसी बड़े घर की स्त्री जान पडती है। यहां अकेली जंगल में कैसे आई ? और कोई साथ भी है जो कहीं दाना पानी की खोज में गया है ? या तू एक दम अकेली है ?" रानी की दशा कुछ न पूछो। रो रो कर सब कुछ कह सुनाया। साधू ने पूछा, "अब यहां तेरी रक्षा कौन करेगा ?" महात्मन् ! मेरी रक्षा महावीर करेंगे।" साधू ने फिर पूछा "महावीर कौन है ?" क्योंकि उसने महावीर किसी साधारण मनुष्य को समझा था। रानी बोली— महावीर धर्म है। महावीर सभ्यता है, महावीर शील क्षमा और दया है। महावीर ने पाँच तत्त्वों के बने हुये शरीर को त्याग दिया परन्तु उसने धर्म, शील क्षमा, दया और तप को अपना शरीर बना रक्खा है। वही मनुष्य मात्र का आदर्श है।" साधू को आश्चर्य हुआ। वह समझ गया कि यह कोई साधारण स्त्री नहीं है किन्तु ज्ञानी है। उसको ढारस दी और कहा, "बहिन ! इस वन में मेरा आश्रम (विहार) है और उसका नाम भी महावीर विहार है। जब इस नाम पर तुझको इतनी श्रद्धा है तो वहाँ चल कर रह। हम सब तेरी सेवा और सहायता करेंगे और जब तक तेरे अच्छे दिन न आयेंगे वहाँ तू कुछ दिनों शान्ति से रह सकेगी।"

रानी उस विहार में आई और भिक्षुनी के समान जीवन व्यतीत करने लगी।

—❀(८)❀—

कई महीने बीत गये। एक दिन राजा के मन में आया कि रानी के कपड़े लत्ते और भूषण वस्त्र दीन दुखियों को बाँट

दिये जायें। उसने उसके कपड़ों के सन्दूक को खोला। दोनों साड़ियां को जो रानी के सर पर बला लाई थीं भोज पत्रों में लपेट कर रक्खी हुई थीं और उस पर लिखा हुआ था—'यह मेरे प्यारे ने भेजा है जिसको मैं बड़े प्रेम और आदर से रक्खूँगी।' इन शब्दों का पढ़ना था कि उसके हृदय में और भी आग लग गई। बण्डल को खोला, दोनों साड़ियां गिर पड़ी। उन पर जगह जगह बेल बूटों के रूप में 'जयसेन' का नाम लिखा हुआ था 'काटो तो लुहू नहीं बदन में।' ईर्षा की जगह उसी समय दुख और सोच ने लेली। आंखों से आंसू गिर पड़े, 'ऐ निर्दोष और निरपराध रानी! मैंने केवल भ्रम और झूठे सन्देह में पड़कर तेरी जान ली मैं पापी हूँ। मुझको धिकार है! यह पाप करके मैं जीता कैसे हूँ! मैं पाप की आग से जलकर भस्म क्यों न होगया! मुझपर महल की छत क्यों न गिर पड़ी!" रोते रोते हिचकियाँ लग गईं और वह मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा जब चेत आया फिर वैसे ही रोने और विलाप करने लगा। अन्त में उसने यह प्रतिज्ञा की कि जैसे मैंने रानी को दुख देकर मारा है मुझको भी वैसे ही मरना चाहिये। यह सोच विचार कर उसने जंगल में जाकर मरने की ठहरा ली। सब को दुख हुआ। अब तक किसी को पता नही था कि रानी क्या हुई और कहाँ गई क्योंकि राजा ने चण्डाल ताकीद के साथ समझा दिया था कि यह भेद किसी पर खुलने न पाये। अब सब जान गये कि केवल झूठे भ्रम में पड़कर राजा ने उस बेचारी दुखिया के हाथ कटवा कर जंगल में छुड़वा दिया था। सबको महा दुख हुआ क्योंकि जब से वह आई थी शङ्खनगर की अवस्था एक दम बदल गई थी। देश आनन्द और प्रजा सुखी थी। सारी प्रजा धर्म्मात्मा बन गई थी। रानी का नाम धर्म्म का प्रबोधक बन गया था। ऐसा रोना पीटना मच गया जिसका कुछ ठिकाना नहीं।

जब सब को पता लग गया कि राजा अब बन को चला जायेगा तब मन्त्री और दरबारियों ने आकर समझाया कि इस विचार को चित्त से दूर कीजिये परन्तु वह ऐसे समय में किस की सुनता था ! सब चुप होगये। दत्त की बात को वह ध्यान से सुनता था परन्तु वह अन्य देश में था लाचार उसके बाप गजश्रेष्ठ को बुला भेजा। उसने आकर राजा से कहा, "महाराज ! एकबार आपने बना विचारे हुये काम किया उसका परिणाम यह दुख हुआ। अब दूसरी बार फिर आप बिचारे बिना काम कर रहे हैं। देखिये ! ऐसा न हो कि आप को और भी अधिक पछताना पड़े।" यह शब्द कुछ इस प्रकार से कहे गये थे कि राजा चौकन्ना होगया। बोला, "फिर तुम बताओ अब क्या करूँ ?" उसने कहा, "आप जिनेश्वर हैं आप जैनियों के राजा हैं आप जिनालय में नित्य जाकर जिनेश्वर भगवान महावीर स्वामी की पूजा किया करें। मैं एक प्रसिद्ध यति अमित तेज को बुला लाता हूँ। वह नगर से बाहर बन में रहता है। वह आपको नित्य उपदेश सुनायेगा। सम्भव है आपका चित्त ठिकाने आ जाये।"

राजा ने इस बात को मान लिया।

—*(६)*—

अमित तेज यती आया। उसने पहिले दिन राजा को उपदेश दिया, "महाराज ! यह संसार कर्म्मक्षेत्र है। मन वचन और कर्म्म से जो काम किया जाता है मनुष्य उसी का फल पाता है। हमारे जीवन का आधार हमारा कर्म्म है। इस कर्म्म का खेल मन है। शुभ या अशुभ विचार बीज हैं। बचन और बानी विलास उसके फूल हैं और कर्म्म वह कच्ची कलियाँ हैं जो फूलों के अन्दर छुपी रहती हैं और जब यह खिलती हैं फल प्राप्त होता है। फल वही है जिसको हम इस जीवन में नित्य भोगते हैं। हमने जैसा किया वैसा फल पाया और उसी के अनुसार हमारा

जन्म हुआ। अच्छे कर्म्म करने से अच्छा जन्म और बुरे कर्म्म करने से बुरा जन्म मिलता है। कोई यह कभी न कहे कि दुख और सुख को किसी और ने जन्म दिया है। नहीं! कदापि नहीं! यह हमारे कर्म्मों के फल हैं। यह कर्म्म तीन प्रकार के होते हैं। प्रारब्ध, क्रियमान और सञ्चित। प्रारब्ध तो वर्त्तमान दशा में फल दे रहे हैं। क्रियमान किये जा रहे हैं जिनमें से कोई कोई सञ्चित होगा। कोई कोई अगले जन्म में प्रारब्ध भी बनेगा और कोई इसी जन्म में फल देता है। सञ्चित वह हैं जो इकट्ठा हो रहे हैं। अभी फल नहीं देते आगे चलकर किसी न किसी जन्म में विकास पायेंगे।"

राजन्! यह कर्म प्रबल है। तुमने इस जन्म में किसी से दुख पाया। सम्भव है कि तुमने उस जन्म में उसको दुख दिया हो और वह अपना बदला ले रहा हो। तुम से किसी ने इस जन्म में दुख पाया। सम्भव है कि उसने अगले जन्म में तुमको दुख दिया हो और अब तुम उसको दुख दे रहे हो। कर्म कथा को कोई कैसे किसी को सुनावे! उसके अनेक रूप हैं। इसीलिये जिनेश्वर भगवान की आज्ञा है कि "अहिंसा परमो धर्मः।" किसी को मन वचन और कर्म से कभी न सताओ। शील, क्षमा और दया का व्रत पालन करो। यदि किसी ने तुम्हारा अकाज भी किया हो तो उसको क्षमा करो। अपना बिगाड़ो। मन और इन्द्रियों को वश में रक्खो जिससे अशुभ कर्म फिर न होने पावें और शुभ कर्म करने से सुन्दर शरीर, सुन्दर कुल, सुन्दर देश और सुन्दर सामग्री मिलती हैं। मनुष्य इनको पाकर और इनके साथ उचित व्यवहार और बर्त्ताव करके अपनी और दूसरों की भलाई करता है और अन्त में वह उसी प्रकार की भलाई करता हुआ, दया धर्म पालता हुआ और अहिंसा का व्रत धारण करता हुआ कड़ी पदवी को प्राप्त होता है जो ऋषि मुनि और ज्ञानियों का आदर्श है।"

"राजन्! तुमने अपनी रानी को ईर्षा के कारण दुख दिया तुमको सोचना चाहिए कि यह दुख क्यों हुआ। इसका बीज तुम्हारे मन में उत्पन्न हुआ। तुमने उसको दुख दिया। अब वह दुख लौट कर तुमको लगा और तुम पश्चाताप कर रहे हो। हो सके तो अब उस बीज को जला कर भस्म कर दो। उसमें अङ्कुर न आने पावे और न फल फूल उत्पन्न हो सकें। विचार से काम लेना सीखो। तब ही तुम्हारा कल्याण होगा।"

इस उपदेश से राजा को ढारस हुई और जंगल जाने के विचार को छोड़ कर अपना काम काज करने लगा परन्तु फिर भी रानी का ध्यान, उसको दुखी करता रहा। यती नित्य आता और उपदेश कर जाता। नित्य के उपदेश से राजा को तसल्ली मिलती परन्तु रानी का ध्यान चित् से न गया पर न गया।

—×(१०)×—

एक दिन राजा ने मुनि से कहा, "भगवन्! मैंने आज, रात को एक स्वप्न देखा। आप उसका फल बतलाइये।" मुनि ने पूछा, "वह स्वप्न क्या है?" उसने उत्तर दिया, "कल्प वृक्ष की एक डाली नीचे की ओर लटकी हुई है। मेरी इच्छा पर वह मेरी ओर झुक जाती है और उस डाली में एक बहुत सुन्दर फल लगा हुआ है।" मुनि बोला, "सुन राजा इस स्वप्न से पता लगता है कि तेरी रानी अभी तक जीती है और उसके गर्भ से पुत्र उत्पन्न हुआ है जो किसी न किसी दिन तुझको मिलेगा। मेरी समझ में आता है कि तू किसी को बन में भेजकर रानी की खोज करा। आशा तो है कि वह मिल जायेगी।"

राजा मनमें बहुत ही प्रसन्न हुआ और उसका दुख हर्ष के साथ कुछ कुछ बदलने लगा। इतने में दत्त के सफ़र से आने की सूचना मिली, राजा ने यह सुनकर उसको बुला भेजा और जब

वह आया अपनी भूल और अत्याचार की कहानी कह सुनाई। दत्त ने बहुत ही शोक प्रकट किया, "शोक है राजन्! कलावती स्त्री नहीं थी रत्न थी। मैंने तुमको पहिले ही बताया था। अब खोकर व्यर्थ पछताते हो। उसके हाथ तक कटवा डाले अब यदि वह मिली भी तो लज्जा वश किसी के सामने कैसे होगी।" राजा ने कहा, "मैं अपने हाथों उसकी सेवा करूँगा। किसी बाँदी या दासी को उसका काम न करने दूँगा। ऐ दत्त! यदि तुझसे हो सके तो एक बार रानी को लाकर मुझे दिखा दे। मैं उससे "क्षमा के लिये प्रार्थना करूँगा।" दत्त ने उत्तर दिया, "क्षमा मांगना सहल है परन्तु हाथ आना कठिन है। मैं जाता हूँ, ढूँढूगा। वह मिल गई तो साथ लाऊँगा और यदि न मिली तो दुर्भाग्य! इसके अतिरिक्त और क्या कहा जाये।"

यह कहकर दत्त ने चण्डाल को बुलाया। उससे जंगल का पता लिया और उसी पते पर चल निकला। कई दिन ढूँढ़ने में लग गये परन्तु पता नहीं लगा। अन्त में वह घबरा गया और उदास होकर नगर की ओर लौटने ही को था कि एक यती गेरूआ कपड़े पहिने हुये दिखाई दिया।

दत्त—"महाराज! इस जंगल में कोई दो पथिक भूल गये आप कुछ उनका पता दे सकते हैं?"

यती—"कौन पथिक? यहां सब ही पथिक आते हैं। जंगल में रहता कौन है?"

दत्त—"आप तो रहते हैं। और लोग पथिक ही सही।"

यती—"तुम स्पष्ट कहो क्या पूछते हो?

दत्त—"एक दोनों हाथ कटी हुई सुन्दर युवती और उसका नन्हा बालक। इन दोनों को खोज रहा हूँ।

यती—"असम्भव है। जिसके हाथ नहीं वह बच्चे को सँभाल कैसे सकेगी?"

दत्त--"सच है ! आप सत्य कहते हैं परन्तु मैं झूठ नहीं कहता ।"

यती--"झूठ तो मैं भी नहीं कहता परन्तु यह बात कितने दिनों की है ?"

दत्त—"कई महीने बीत चुके हैं।

यती—"हमने इस प्रकार की कोई स्त्री नहीं देखी परन्तु तुम हमारे विहार में चलो। जिनेश्वर के दर्शन करो। उसके प्रताप से सम्भव है कि तुमको कुछ पता लग जाये। वहाँ कई साधू रहते हैं। यदि किसी ने देखा है तो वह बता देगा।"

—❀(११)❀—

दत्त—विहार में साधू के साथ आया। विहार क्या था ? एक बड़ा बाग था जिसके भीतर बहुत से घर बने हुये थे। पक्षी गण वृक्षों पर आन्दन से चहचहा रहे थे। पशु इत्यादि अभय होकर घास चर रहे थे। वह जानते थे कि यहां कोई छेड़ छाड़ न करेगा। वह विहार के मनुष्यों से इतने हिले मिले थे मानो उस पवित्र स्थान के समस्त मनुष्य और पशु एक ही कुटुम्ब और एक ही परिवार के लोग हैं। यह विहार भिक्षुओं का था। उसके एक कोने में एक अकेली स्त्री अपने बच्चे के साथ रहती थी और वह भी यहां प्रसन्न थी क्योंकि यहां से संसार का दुख कोसों दूर रहा करता था। साधुओं के पवित्र संस्कारों ने अपना मण्डल बांध रक्खा था। जो आता था उस पर उसका गहिरा प्रभाव पड़ता था दत्त को भी वह जगह बहुत अच्छी लगी। यती ने स्त्री का रूप रंग बताकर साधुओं से पूछा कि आया इस प्रकार की स्त्री किसी ने जंगल में देखी है ! और तो सब चुप हो गये परन्तु एक साधू ने कहा, "हाँ ! मैंने देखी है। तुम अपना प्रयोजन कहो तब मैं जो उचित समझूँगा तुम्हें उत्तर दूँगा।"

दत्त—"उसका पति महा दुखी है।"

साधू—"उसका दुख किस प्रकार का है ?"

दत्त—"उसने निर्पराध उस स्त्री के हाथ कटवा कर जंगल में छोड़ दिया था। अब उसको निश्चय हो गया कि वह एक दम निर्दोष थी। इसलिये वह बहुत पश्चाताप करता है।"

साधू—"यदि स्त्री मिल जाये तो फिर तो वह किसी और को दण्ड न देगा ?"

दत्त—नहीं, परन्तु क्या उसके हाथ सच मुच कटे हैं ?"

साधू—"हाँ ! यदि तुम समझ लो कि हाथ कटने का अभिप्राय यह भी है कि मनुष्य [illegible] और बिना आश्रय के हो जाये।"

दत्त—"आप मुझको दिखा दीजिये और उसका पता दीजिये। मैं जा कर मिलूँ। उस समय मैं समझ जाऊँगा कि आया वह वही स्त्री है जिसे मैं ढूँढ़ रहा हूँ या दूसरी है।"

दोनों कलावती के पास आये। कलावती बच्चे को गोद में लिये हुये लोरियाँ गा रहीं थी। दत्त को देखते ही उसकी आँखों से आंसू निकल पड़े। दत्त भी रोने लगा ! रानी ने कोई बात नहीं कही। तत्त ने सारी कथा राजा के दुख की कह सुनाई। रानी के सर पर दुख का पहाड़ टूट पड़ा। वह कहने लगी, "हाय ! मैं जीती हूँ और मेरा पति इस प्रकार दुख सहे ! मैं अभी नगर चलने को तैय्यार हूँ यदि यह यती मुझे आज्ञा दें। यती ने हँसकर कहा, "हां आज्ञा एक शर्त पर मिल सकती है।" दत्त ने पूछा, "वह क्या है ?" साधू ने उत्तर दिया, "कलावती ने यहां पत्थर की अपनी हथकटी मूर्ति बनाई है और उस पर ऐसा रंग दिया है कि कोई मनुष्य यह नहीं कह सकता कि वह पत्थर की मूर्ति है या कलावती है। तुम राजा को ढारस देकर पहिले इस मूर्ति को दिखा दो, फिर कलवती यहां से चली जायेगी।"

दत्त—ने यह बात मान ली।

—❀ (१२) ❀—

दत्त—ने आकर राजा से कहा, "कलावती अपने बच्चे के साथ जीवित है परन्तु वह जिस जगह विहार में है वहाँ के यती कहते हैं—कि राजा ने जिस प्रकार देश से निकाला वैसे ही उसको स्वयं आकर ले जाये। हम इस अबला और नन्हे बालक को उसी के हाथ सौंप देंगे। कौन जाने कोई कैसा हो! और आवश्यकता भी इसी बात की है कि आप रानी और राजकुमार को स्वयं ले आवें।" राजा ने इसे स्वीकार कर लिया और मन्त्री दरबारी सब को साथ लेकर विहार में आया। उसने साधुओं को बहुत कुछ भेंट दिये। जिनेश्वर का दर्शन किया। साधुओं ने आशीर्वाद दिये।

तत्पश्चात् राजा को उस कोठरी में ले गये जहाँ कलावती की मूर्ति चुपचाप खड़ी थी और साथ ही एक पलँगड़ी पर नन्हे बालक की मूर्ति लेटी हुई अपना अँगूठा चूस रही थी। राजा ने ध्यान के साथ उन अचल मूर्तियों को देखा। उसके मन में अनेक प्रकार के विचार उत्पन्न हुये। मन के भाव को न रोक सका। वह मूर्त्ति के पाँव पर गिरना ही चाहता था क्योंकि उसने उसको अपनी जीती जागती रानी समझा था परन्तु ज्यों ही वह उधर झुका एक स्त्री ने झपट कर उसका हाथ पकड़ लिया, 'प्राण नाथ! अभागी कलावती यह है। वह तो मूर्त्ति है।' स्त्री पुरुष दोनों गले मिले। साधू और दत्त उसी समय बाहर निकल आये। राजा ने रो रो कर अपने अपराध की क्षमा मांगी आगे के लिए उसकी प्रसन्नता पर रहने और चलने का शपथ किया। रानी ने अपने आंचल से उसके आँसू पोंछे और कर्म की गति को प्रबल बताकर उसे ढारस दी। राजा ने फिर नन्हे बच्चे को गोद में उठा लिया। बच्चा उसे अजनबी समझ कर रोने लगा। राजा ने कहा, 'बच्चा इसलिए रोता है कि वह पापी की गोद में आया है।' रानी बोली, 'नहीं महाराज! यह आनन्द का रोना है। बच्चा

समझता है कि अब उसका सच्चा अन्नदाता मिल गया।'

स्त्री पुरुष का मिलाप हुआ। उनकी आँखों से आंसुओं की धारा बह रही थी। इस आनन्द के अवसर पर दुख की कहानी क्यों कही जाये।! जो होने को था हो गया। राजा ने उसके हाथों को ठीक देखकर पूछा, 'हाथ कैसे लग गए?' उसने उत्तर दिया, 'जिनेश्वर की कृपा।' फिर किसी ने इस विषय में अधिक बात चीत नहीं की। साधू की आज्ञा लेकर वह अपने घर लौट आये। जैसे उनके दिन फिरे ईश्वर करे सब के दिन फिरें।

महारानी चल्लन

—(१)—

महाराजा चेटक विशाला नगरी में राज करता था। उसकी सात कन्यायें थीं। सब की सब महा सुन्दरी और रूपवती थीं। इतना ही नहीं था। किन्तु प्रकृति माता ने उन्हें विद्या, बुद्धि, ज्ञान और विवेक के भूषण से सुसज्जित कर रक्खा था। इनके नाम यह थे:—प्रभावती, पद्मावती, मृगावती, शिवा, ज्येष्ठा, सुजेष्ठा और चल्लन।

चल्लन सब से छोटी थी। ज्येष्ठा इससे कुछ बड़ी थी। सब की सब एक ही माता से उत्पन्न नहीं हुई थीं। चेटक की कई रानियां थीं। जैसे सब रानियां एक दूसरे के साथ प्रेम भाव रखती थीं वैसे ही यह सौतीली बहिनें भी एक दूसरे को बहुत ही प्यार करती थीं यह सब की सब शास्त्रज्ञ, संस्कृत और प्राकृत भाषा की पूर्ण पंडिता, कला कौशल और चित्रकारी में निपुण और धर्म की मर्यादा पर चलने वाली थीं। रात दिन धर्म चर्चा के अतिरिक्त और कोई काम नहीं था।

इनमें से हर एक अपने अपने ढंग में अद्वितीय थीं परन्तु चल्लन बहुत ही विवेकी और ज्ञानी बताई गई है। जैनमत के

इतिहास में इस पवित्र देवी का नाम सुनहले अक्षरों में लिखे जाने के योग्य है।

पाँचौ लड़कियों का विवाह हो चुका था। प्रभावती राजा उद्यान की, पद्मावती चम्पापुरी के राजा विधि वाहन की, मृगावती कुशवती राजा शतानीक की, शिवा उज्जयन के राजा चण्डदेव की, और ज्येष्ठा गंडग्राम के राजा आधिपत्ति या वीरप्रभू के बड़े भाई नन्दिवाहन की रानी थी। सुज्येष्ठा और चल्लन अभी तक कुँआरी थीं। राजा इन दोनों के लिये सुयोग्य वर की खोज में था परन्तु कर्म ने कुछ और ही रंग दिखाया।

चल्लन बड़ी ही लज्जावती और सुशीला थी परन्तु सुज्येष्ठा स्वभाव की चंचल थी। वह बहुत पढ़ी लिखी थी इसलिये शास्त्रार्थ से उसे विशेष प्रेम था। जो साधू या पण्डित आता था वह उसके साथ छेड़ किये बिना नहीं रहती थी। संयोग वश एक दिन राज महल में शैव मत का एक बूढ़ा सन्यासी कहीं से आगया राजा ने उसे आदर सत्कार और श्रद्धा के साथ भोजन कराया। उस समय हिन्दुओं में मत भेद होने पर भी हर पन्थ के साधू और सन्यासी का उचित सम्मान किया जाता था। सुज्येष्ठा ने अवसर पाकर उसके साथ छेड़ छाड़ आरम्भ कर दिया। सन्यासी ने नम्रता के साथ कहा, 'बेटी! संसार में शैव धर्म से बढ़कर और कोई धर्म नहीं है। वेदान्त इसका आप प्रमाण है। उसके प्रमाण और युक्ति के सामने किसी मत मतान्त्र की बात ठहर नहीं सकती। तू अभी छोटी लड़की है। मैं तुझ से क्या शास्त्रार्थ करूँ?" सुज्येष्ठा समझ गई कि यह सन्यासी शास्त्रज्ञ और विद्वान है। इसके सामने दाल गलना कठिन है। फिर भी वह जान बूझकर वितण्डावाद करने लगी। वह बोली, "फ़लसफ़ा और सिद्धान्त और वस्तु है और धर्म अन्य वस्तु है। फ़लसफ़ा समझने बूझने और बुद्धि विवेक से विचारने का विषय है परन्तु धर्म धारण करने, ग्रहण करने

और जीवन को साधन सम्पन्न बनाने की राह है। तुम्हारे धर्म में कुँये बावली और तालाब में नहाने की आज्ञा है। इसलिये उसका पानी अशुद्ध अपवित्र और मैला हो जाता है। बार बार उनमें डुबकी लगाने से पानी गदला हो जाता है। फिर धोने या पीने के योग्य नहीं रहता। जैन धर्म का उपदेश है कि तुम नहा धोकर कुये बावली और तालाब के पानी को गन्दा न करो किन्तु उन से पानी लेकर और जगह पवित्रता के साथ स्नान करो जिससे पानी तुम्हारे शरीर के हानिकारक परमाणुओं को अपने में खींच ले और दूसरे लोगों को उसकी छूत से रोगी बनने का भय अथवा सन्देह न रहे। यदि इसी बात पर तुम विचार करो तो जैन धर्म को शैव धर्म से कहीं श्रेष्ठ पाओगे।'

एक तो सन्यासी स्वाभाविक चुप रहा करता था, दूसरे वह छोटी लड़की के साथ शास्त्रार्थ करना भी नहीं चाहता था, तीसरे राज कन्या की इस बात का उत्तर उसे उस समय कुछ भी न सूझा। वह कहता भी तो क्या कहता! उसने सर नीचा कर लिया परन्तु अपने मन में सोचा—'यह राज कन्या बड़ी बुद्धिमान है। यदि यह कहीं हमारे राजा श्रेणिक के महल की रानी हो जाए तो इस देश में विद्या बुद्धि का प्रचार भली भाँति होगा और वहाँ आप ही इसका धार्मिक अहङ्कार भी दूर हो जायेगा।'

इस विचार से उसने सुजेष्ठा का चित्र खींच लिया और राजा चेटक से विदा होकर अपने देश को चला आया।

—*(२)*—

साधू राजगृह नगर में पहुँचा। वह तो सुजेष्ठा को नीचा दिखाना चाहता था इसलिये वह राजा श्रेणिक से मिला और उसे चित्र दिखलाया। राजा दंग रह गया, 'साधू! यह किसका चित्र है?' उसने उत्तर दिया, 'चेटक के महल में इन्द्र की किसी अप्सरा ने जन्म लिया है। उसका नाम

सुजेष्ठा है। ऐसी रूपवती न मैंने आंखों से देखी न कानों सुनी। कौन कह सकता है कि वह इस भूमण्डल की स्त्री है या इन्द्र के अखाड़ें की कोई परी है। नख से सिख तक सुडौल। हाथ पांव सौन्दर्य के सांचे में ढले हुए। बात करती है तो मुँह से फूल झड़ते हैं। मनुष्य की क्या शक्ति है कि उसको देखकर मोहित न हो जाये। यहां तो ऋषि मुनि ज्ञानी ध्यानी तक का ध्यान छूट जाता है। आंखों में जादू है। मनुष्य देखते ही विवश हो जाता है। मैं इस विचार से यहां लौट आया हूँ कि तुम उस देवी को लाकर अपने महल में स्थापित करो।' राजा ने कहा, 'मेरे महल में कई रानियाँ हैं और ईश्वर की कृपा से सन्तान भी है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि मेरी अवस्था भी अधिक है। अब विवाह करना मुझे शोभा नहीं देगा।" साधू बोला, "धन द्रव्य के प्राप्त करने, राज्य के बढ़ाने और सुन्दर स्त्री के भोगने से जिस राजा को सन्तोष हो गया वह धर्म्म से गिर गया। सन्तोष राजाओं के लिये नहीं किन्तु विरक्त साधू सन्यासियों के लिये है। राजा के मन में उमङ्ग, उत्साह और साहस होना चाहिये उसे नित नई नई वस्तुओं के भोग की इच्छा होनी चाहिये। आज कुछ और कल कुछ! तब तो राज रहता है और उसकी वृद्धि होती है नहीं तो वह नष्ट भ्रष्ट हो जाता है। धन द्रव्य राज पाट, स्त्री पुत्र की अधिकता राजाओं ही को शोभा देती है। यह सब पदार्थ बिना परिश्रम और साहस के हाथ नहीं आते। उत्साह रहित राजा भी क्या है! कुछ नहीं राज धर्म्म यह है कि उन्नति की ओर बराबर ध्यान रहे। बढ़ने ही में कुशल है। रुके नहीं कि मरे नहीं विद्यार्थियों को, स्त्री के चाहने वालों को, नये नये देश जीतने वालों को कभी भूलकर भी न सोचना चाहिये कि उनकी अवस्था अधिक होगई है। आप तो राजा हैं। यह केवल साधुओं का धर्म्म है। आप साधू नहीं हैं किन्तु राजा हैं। यदि राजा कायर

और डरपोक होगया तो वह राज की वृद्धि क्या करेगा ?" साधू की बातों ने श्रेणिक के हृदय पर अपना प्रभाव डाला। उसने अपने पुरोहित को चेटक के दरबार में विवाह का सन्देश लेकर भेजा परन्तु चेटक बुद्धिमान और विवेकी था। कौन अपनी कन्या किसी अधिक अवस्था वाले वर को देना चाहता है ? उसने बहाने से काम लिया। पुरोहित को बातों बातों में टाल दिया। जब श्रेणिक ने यह बात सुनी वह लज्जित हुआ परन्तु वह लड़ना नहीं चाहता था। वह चुप हो रहा और मन ही मन पश्चाताप करने लगा।

उस राजा का मन्त्री उसका बड़ा लड़का अभय कुमार था। वह बहुत ही सुशील, साहसी, पराक्रमी और आज्ञाकारी था। उसने बाप की दशा देखी। मन में दया आई। लड़का था। बाप के साथ बात चीत करना अनुचित और असभ्यता थी। बेचारा करता भी तो क्या करता। दो चार दिन सोचता रहा। एक दिन बाप के चरणों में सर झुका कर बोला, 'पिता जी ! मुझको आपके दुःख का पता लग गया है। मैं चाहता हूं कि आप अपने मन को दुखी न करें। मैं आपका ऋणी हूं। बेटा सदैव माता पिता का ऋणी रहता है। यदि किसी प्रकार की सेवा से इस ऋण से मेरा उद्धार हो जाये तो मैं अपने आपको भाग्यवान समझूँगा। जहां बल और पराक्रम से काम नहीं निकलता वहाँ छल और युक्ति से कार्य सिद्ध होता है। यह सब बातें धर्म के सम्बन्ध में अच्छी नहीं समझी जातीं परन्तु राज धर्म में यह सब आवश्यक हैं और इनसे कोई भी पाप नहीं होता। यदि आप आज्ञा दें तो मैं सुजेष्ठा के लाने का यत्न करूँ।'

राजा इन बातों को सुनकर बहुत ही प्रसन्न हुआ 'अपनी इन्द्री के भोग के लिए मैं लड़ाई भिड़ाई नहीं करना चाहता।' अभयकुमार ने उत्तर दिया, 'यह सब सच है परन्तु आप

इस सोच में चिन्तित रहकर दुखी रहते हैं। जैसे भीष्म ने अपने बाप शान्तनु को सत्यवती (मच्छोदरी) से मिला दिया था। मैं भी वैसे ही कोई न कोई यत्न अवश्य करूँगा। और आपको बिना मार धाड़ ही सफलता प्राप्त हो जायेगी। और यदि किसी के भाग्य में ऐसा ही लिखा है कि वह जान से मारा जाए तो फिर उसे कौन रोक सकता है।'

राजा ने अपने लड़के की बात मान ली और उसे आज्ञा दी कि जैसे चाहे इस काम में हाथ डाले।

—×(३)×—

अभय कुमार भेष बदलकर विशाला नगरी में आया उसने राजमहल के पास एक किराये की दुकान ले ली और वणिज व्यौपार का काम करने लगा। उसकी दुकान पर विशेषता के साथ ऐसी वस्तुयें अधिक रहा करती थीं जो स्त्री जाति को प्रिय होती हैं। रुपये पैसे की कमी तो थी ही नहीं। दुकान उत्तमता के साथ सजाई गई। ग्राहकों की जो भीड़ होने लगी तो कभी कभी दुकान में तिल रखने को भी जगह नहीं रहती थी। राजमहल की लौंडियाँ और दासियां भी आने लगीं। उसने उनके साथ व्यवहार बढ़ाया और उनका मुँह रुपयों पैसों से भर कर उनको अपना कर लिया। जब यह मुट्ठी में आ गईं फिर क्या था! सुज्येष्ठा को श्रेणिक का चित्र दिखाया गया। दासियां उसे समझाने बुझाने और राह पर लाने लगीं। वह अब किशोरी से तरुणी हो गई थी। वह पढ़ी लिखी और समझदार थी परन्तु प्राकृतिक स्वभाव को आज तक किसने वश में किया है। यहां आकर बुद्धि विचार और विवेक सब विदा हो जाते हैं। सुज्येष्ठा ने स्वयं श्रेणिक के साथ विवाह करने की इच्छा प्रगट की परन्तु जब पता लगा कि बाप इस विवाह को नहीं चाहता तब दासियों के दम झाँसे में आकर उसने श्रेणिक के साथ भाग जाने का विचार किया। हिन्दुओं में उस समय ऐसी

घटनायें बहुत हुआ करती थीं। जब यह हिन्दू जाति जागृत अवस्था में थी उस समय हर कन्या को अधिकार था कि वह अपनी इच्छानुसार सुयोग्य वर ढूँढ़े। जब कभी और जहाँ कहीं राज के मन्त्री किसी मुख्य अभिप्राय से किसी राजकन्या का सम्बन्ध राजाओं से ठहराते थे कन्यायें इसमें अपने अधिकार को हाथ से जाते हुये देखकर सामाजिक आन्दोलन मचा देती थीं। कैसे शोक की बात है कि कङ्गाल से कङ्गाल मनुष्य भी अपनी सन्तान का इच्छानुसार विवाह करने का पूर्ण अधिकार रखता है परन्तु यदि यह अधिकार नहीं प्राप्त है तो केवल राजकुमार और राजकुमारियों को। उनकी इच्छा पोलिटिकल चाल के आधीन रक्खी जाती है। वह चाहें या न चाहें परन्तु उन्हें विशेष राजकुमार और राजकुमारियों के साथ इच्छा विरुद्ध विवाह करना ही पड़ता है। जीवन पर्यन्त उन्हें पराधीन रहना पड़ता है। पहिले समय में ऐसा कम होता था। वर्तमान काल में सभ्यदेश के राजकुमारों और राजकुमारियों को इस विषय में इतना भी अधिकार नहीं है जितना जंगली मनुष्यों और पशुओं को है। सुज्येष्ठा के हृदय को ठेस लगी दासियों ने इस अवसर को अच्छा समझा। अभय कुमार इसी ताक में था। उसने इनकी सहायता से चुपके चुपके विशाला नगरी से राजगृही नगर तक सुरंग खुदवाई। जब यह सुरंग तैयार हो चुकी राजा को सूचना दी गई। वह चुने चुने सूर वीरों को साथ लेकर उसी की राह से चेटक के महल में आया। आज कल ऐसी सुरंग की बातें असम्भव प्रतीत होती हैं परन्तु जिन्होंने पुराने समय के टूटे फूटे सुरंगों को कहीं कहीं देखा है वह इनके सच्चे होने का विश्वास दिलायेंगे।

राजा श्रेणिक सुरंग की राह से आकर सुज्येष्ठा से मिला और उसने राजगृही की रानी बनना स्वीकार किया।

यह काम ऐसी सावधानी के साथ और चुपके चुपके किया

गया था कि सुज्येष्ठा, उसकी दो दासियों अभयकुमार और उसके नौकरों के अतिरिक्त और किसी को कानों कान पता नहीं था परन्तु सुज्येष्ठा अपने मन में डरती थी। चिन्ता के कारण उसका मुख सूख गया था। चल्लन ने इसकी अवस्था देखी और मन में दुखी होकर पूछने लगी, "बहिन ! तेरी क्या दशा है ? क्या दुख है ? किस चिंता में है ?" उसने पहिले तो बहुत कुछ बहाने किये परन्तु चल्लन जहाँ स्वभाव की सरल थी वहाँ वह समझदार और तीव्र बुद्धि भी थी। समझ गई कि टट्टी की आड़ में शिकार खेल रही है, बोली, "मैं तेरी बहिन हूँ और सखी भी हूँ। मुझ से तू क्यों छुपाती है ? यदि सम्भव हुआ तो मैं तेरी सहायता भी करूँगी और दुख के निवारण करने का यत्न भी सोचूँगी।" प्रेम में जादू होता है। सुज्येष्ठा जो बहुत चंचल थी उबल पड़ी। सारी कथा कह सुनाई। चल्लन उसे बुरा भला कहने के बदले समझाने लगी, "इस में दोष ही क्या है ? सनातन से ऐसा ही होता आया है। भगवान श्री कृष्ण जी के साथ रुक्मिणी जी भाग गई थी। सुभद्रा विवाह की आशा न देखकर अर्जुन के साथ द्वारका से चली गई थी। कुछ चिन्ता नहीं ! चल ! मैं भी तेरे साथ चलूँगी और तेरी सखी बनकर रहूँगी।" अभी तक तो सुज्येष्ठा को श्रेणिक के महल में जाने का ध्यान था अब चल्लन को भी वही धुन समाई परन्तु उस की यह धुन किसी बुरी इच्छा से नहीं थी। वह धर्मात्मा लड़की थी। केवल बहिन का साथ देना चाहती थी।

—(४)—

सुरंग में अँधेरा था। श्रेणिक आया। सुज्येष्ठा और चल्लन रथ पर बैठीं। रथ चलने ही को था कि सुज्येष्ठा को अपने बहुमूल्य गहनों के डब्बों की याद आई। वह रथ से उतर पड़ी और बोली, "मैं अपने गहने लाना भूल गई हूँ। महल से

लाऊँ तब साथ चलूँ।" वह भीतर गई। यह दोनों उसकी राह देख रहे थे। आह! हम किस प्रकार लोभ में पड़कर अमूल्य अवसर को हाथ से खो देते हैं। यह केवल संसारियों ही की दशा नहीं है किंतु ज्ञानी ध्यानी भी इस जाल में फँस जाते हैं। यदि कोई सच्चा गुरु मिला तो गिर कर भी सँभल जाते हैं। और अपनी बिगड़ी बना लेते हैं। यदि गुरु नहीं मिला तो इधर से भी गये और उधर से भी गये।

सुज्येष्ठा भूषण लेने गई। इधर किसी बाँदी ने डर कर चेटक और उसकी रानियों को सुरङ्ग खोदे जाने का पता दे दिया। राजा दस बीस मनुष्यों को साथ लेकर आ पहुँचा। श्रेणिक भयभीत हो गया। करता भी तो क्या करता! दो चार मनुष्य अन्य देश में क्या कर सकते हैं! हाथ पाँव फूल गए। उसने सुरंग की राह रथ को हांक दिया। चल्लन चुप चाप सोच विचार में पड़ गई। एक ओर अपनी बदनामी और उपहास का ध्यान! दूसरी ओर अपनी बहिन के कार्य सिद्ध न होने का शोक! चुप! जिह्वा तालू से लग गई। इतने में जब सुजेष्ठा ने देखा कि रथ खड़खड़ाता हुआ चला जा रहा है उसने पुकारा, 'दौड़ो! श्रेणिक चल्लन को भगाये लिये जा रहा है। उसको बचाओ। वह जाना नहीं चाहती।' लोग सुरंग के मुँह पर पहुंचे। श्रेणिक तो नौ दो ग्यारह हो गया। शेर की माँद में रहना मूर्खता थी। उसके पाँव उखड़ गए। वह बगटुट भागा। चेटक ने पीछा करने के लिए हुक्म दिया परन्तु इतनी ही देर में श्रेणिक बहुत दूर निकल गया था। अँधेरी राह में कितने लोग चल सकते हैं। परन्तु एक वीरंगक नामक पहलवान ने साहस किया। वह उनके पीछे दौड़ा। रथ का पता तो नहीं मिला। हाँ बीस मनुष्य जो श्रेणिक की रक्षा के लिए साथ आये थे बारी बारी से उससे लड़ते और कट कट कर मरते रहे। अभयकुमार ने भी

अवसर पाकर अपनी दुकान छोड़ दी। अपने साथियों को लेकर घोड़े पर सवार हुआ और अपने देश की ओर सरपट भागा। राजा श्रेणिक घण्टों पीछे सुरङ्ग से निकला। केवल थोड़े से लोग साथ थे। उनको लेकर अपनी जान बचा लेगया। उसको तो उस समय सुजेष्ठा और चल्लन की पहिंचान नहीं थी और न राह में किसी प्रकार की बात चीत हुई। दोनों में से कोई भी नहीं बोला। जब यह अपने राजगृही नगर में पहुंचा तो चल्लन को महल की दासियों को सौंप दिया और अभयकुमार की सहायता के लिए सेना एकत्रित होने की आज्ञा दी। इतने में अभयकुमार आप ही आ पहुंचा। उसे देखते ही सब की जान में जान आगई।

—*(५)*—

श्रेणिक—उसी दिन नहाने धोने के पश्चात् चल्लन से मिला। वह सुजेष्ठा से कम रूपवती नहीं थी। सौन्दर्य के अतिरिक्त उसमें विशेष सरलता थी जिसको देखकर वह उस पर लट्टू हो गया। कहने लगा, 'तुम कौन हो? तुम सुजेष्ठा तो नहीं हो। तुम्हारा रूप उस चित्र से भिन्न है जो सन्यासी ने दिखाया था।' उसने उत्तर दिया, मैं 'चल्लन सुजेष्ठा की छोटी बहिन हूं। मैं उसके वियोग के दुःख को सहन नहीं कर सकती इसलिए मैंने भी उसके साथ यहां आना स्वीकार कर लिया था। आह! किसे आना था और कौन आगई!' उसने कहा, 'क्या हर्ज है! भागे भूत की लँगोटी ही बहुत होती है। सुजेष्ठा न मिली तो उसकी बहिन तो हाथ आगई। अवसर मिला तो वह भी आजायेगी। तुम तब तक उसकी जगह महल में रहो और उसके आने की राह देखो।' वह बोली, "यह ठीक नहीं।" श्रेणिक हँसा, 'मैं शपथ करके कहता हूँ कि कि तुम मुझको उससे भी अधिक प्रिय हो। तुम पर मैं ऐसी ऐसी कई सुज्येष्ठाओं को न्यौछा-

वर कर सकता हूं।" चल्लन ने कहा, "यह सच भी हो परन्तु बिना सुज्येष्ठा के मैं तुम्हारे साथ रहना नहीं चाहती। मेरा जीवन अब तक धार्मिक रहा है। मैं अधर्म की राह न चलूंगी।" श्रेणिक मुसकराया, "बहिन को अन्य पुरुष के साथ भाग जाने की सम्मति देना और फिर उसकी सहायक बनना कौन सा धर्म था ?" चल्लन लजा गई। आंखें नीची कर लीं। राजा उसको ढारस देकर बाहर चला आया।

तीसरे चौथे दिन श्रेणिक के जासूसों ने सूचना दी कि "चेटक के महल में रोना पीटना मचा हुआ है। इधर चल्लन निकल भागी। उधर सुज्येष्ठा ने लज्जावश चन्दन बाला नामक भिक्षुनी से दीक्षा लेकर विहार का रहना स्वीकार किया। माँ बाप ने उसे लाख समझाया कि श्रेणिक के साथ तेरा विवाह कर दिया जायेगा परन्तु वह हटीली थी। उसने किसी की बात नहीं सुनी और भिक्षुनी बन गई। न किसी से बोलना न चालना। मौन व्रत धारण कर लिया और जीवन पर्यन्त भिक्षुनी बनी रहने की प्रतिज्ञा कर ली। वीर पहलवान भी लौट गया। चेटक को अब बदला लेने का कुछ भी ध्यान नहीं रहा।"

राजा श्रेणिक ने यह सब बातें चल्लन को सुना दीं और समझा बुझा कर उसे विवाह के लिये उद्यत कर लिया और वह उसकी पटरानी बन गई।

—(६)—

चल्लन को कविता से विशेष प्रेम था! वह प्राकृत भाषा की कवि थी। वह संस्कृत की भी पंडिता थी परन्तु उसकी कविता अधिकता के साथ प्राकृत भाषा ही में पाई जाती है। अनूखे और अछूते विचार थे। उसकी कविता का ढङ्ग भी

विलक्षण और निराला था। कविता सरल परन्तु उच्च विचार से पूर्ण होती थी। सम्भव है इसीलिये उसने संस्कृत भाषा के बदले प्राकृत भाषा में अपने विचार प्रगट किये हों। चल्लन के समय में संस्कृत का रिवाज विद्वानों और राज दरबारियों ही तक था। सर्व साधारण की मातृ भाषा प्राकृत थी जैनियों और बौद्धों के ग्रन्थ इसी भाषा में पाये जाते हैं परन्तु इससे यह नहीं समझना चाहिये कि इनके यहाँ संस्कृत की पुस्तकें नहीं हैं। संस्कृत का वह वैसे ही सत्कार करते थे जैसे वेदों के मानने वाले आर्य किया करते थे परन्तु तीर्थङ्कर और बुद्ध ने प्राकृत भाषा ही को मुख्यता दे रक्खी थी। श्रेणिक भी छोटा मोटा कवि था। दोनों स्त्री पुरुष जब काम काज से छुट्टी पाते तो अपने अनूखे और अछूते विचारों को उत्तमोत्तम श्लोकों में प्रगट किया करते थे। चल्लन की कविता के दबे हुये संस्कार को सुज्येष्ठा के वियोग ने और भी उभार दिया था। विरह, प्रेम, अनुराग और मिलाप यही कविता के शृङ्गार और भाव के उत्तेजन करने वाले होते हैं। स्त्री पुरुष की कविता कुछ ऐसी मिली जुली है कि उन्हें एक दूसरे से पृथक करना महा कठिन है। यह नहीं कहा जा सकता कि कौन किसकी कविता है।

बरसात का दिन था। ठण्डी हवा चल रही थी। दोनों पलँग पर पड़कर सो रहे। रात आधी से अधिक बीत चुकी थी। रानी का एक हाथ चादर से बाहर निकला हुआ था। ठण्डी हवा जो लगी उसका हाथ सुन पड़ गया। नींद खुल गई। उसके मुख से निकल गया, 'यह क्या होगया?' संयोग वश राजा भी जाग उठा। रानी की इस बात को सुनकर उसके मन में अनेक प्रकार की भावनायें उत्पन्न होने लगीं। राजाओं का मन

बुरा होता है। कभी यह गाली देने से प्रसन्न होते हैं और कभी प्रशंसा करने से चिढ़ जाते हैं। अविश्वासी इतने होते हैं कि छोटी छोटी बातों से इनके मन में मैल आ जाता है। श्रेणिक का चित्त इसी एक साधारण घटना के कारण रानी की ओर से फिर गया। पानी और दूध में जब कपट का नमक पड़ जाता है तब वह अलग अलग हो जाते हैं। फिर उनका मिलना खेल नहीं है। वह इतना चिड़ चिड़ा हो गया था रानी जितना ही उसे प्रसन्न करना चाहती थी वह उतना ही बिगड़ता जाता था। दोनों का जीवन दुख मय हो गया। जैसे रात के समय चकोर और चकोरी अलग अलग रहते हैं वैसे ही चल्लन और श्रेणिक भी रहने लगे। मालिक न करे कभी किसी नवयुवती का विवाह बूढ़े के साथ हो। वह बलवान होती है यह निबल! उसमें उमंग और उत्साह होता है इसमें क्षीणता निर्बलता और सुस्ती के साथ अविश्वास।

—❀(७)❀—

बेचारी चल्लन का जीवन दुःख मय हो गया। राजा के अविश्वास दूर करने के लिए इसके पास कोई युक्ति नहीं थी। अन्त में मालिक ने उस पर दया की। उन्हीं दिनों महा प्रभू महावीर स्वामी जैनियों के अन्तिम तीर्थङ्कर जो महात्मा बुद्ध के समय में हुए थे घूमते फिरते हुए राजगृही की ओर आ गए। जैनियों और बौद्धों का सदैव से कुछ विचित्र मेल रहा है। यह आदि से लेकर आज तक आपस में मिले जुले चले आते हैं। जहाँ कहीं बौद्धों के विहार थे। वहाँ ही उसी के निकट जैनियों के विहार भी बनते थे। जहां बुद्ध का मन्दिर बनया जाता था उसके समीप ही जैनी मन्दिर भी रहा करता था। जहाँ जैनियों के यती

धर्म का प्रचार करते थे उनके साथ ही साथ बुद्ध धर्म के भिक्षु अपना उपदेश सुनाते रहते थे। इतिहास में एक उदाहरण भी ऐसा नहीं मिलता जिससे संसार के इन दोनों धर्मों में अनबन होने का पता मिलता हो और इसी मेल जोल को देखकर सर्व साधारण बुद्ध और जैन धर्म को एक ही पन्थ समझने लगे थे। वास्तव में वह एक नहीं है किन्तु दो भिन्न सम्प्रदाय हैं। दोनों ही इन्द्रियों के दमन करने वाले, अहिंसक और दया भाव रखने वाले हैं। दोनों ही के सिद्धान्त और जीवन व्यवहार के नियम कुछ मिले जुले प्रतीत होते हैं परन्तु वह दो पन्थ हैं एक नहीं।

महावीर स्वामी ने आते ही चल्लन को याद किया और उसके धर्म भाव की प्रशंसा की। श्रेणिक जो शैव था महावीर स्वामी के दर्शन को आया। महावीर स्वामी ने उससे कहा, 'यह सती चल्लन जो तुझको प्राप्त हुई है तेरे पहले जन्म के शुभ कर्मों का फल है। बल, विद्या, स्त्री और राज्य यह चार वस्तु मनुष्य के पूर्व जन्म के पुण्य प्रताप से मिलते हैं। यह देवी तेरे राज की पवित्र करने वाली है। तू धन्य है जिसकी अर्द्धाङ्गनी ऐसी शील स्वभाव वाली है।" श्रेणिक यह सुन कर विस्मित हुआ। उसने जिनेश्वर महाराज से अपने भ्रम और संदेह का वृत्तान्त सुनाया। यह हँसे, "तू राजभ्रम में पड़ कर व्यर्थ दुखी हुआ। चल्लन ही नहीं किन्तु जैटक की सातों कन्यायें सती और देवी हैं और उनके पुण्य प्रताप से हजारों तर गये और हजारों ही के उद्धार की आशा है।" राजा का भ्रम जाता रहा। वह भी महावीर स्वामी का सेवक हो गया। उसका लड़का अभयकुमार भी गुरू का शिष्य हो गया उनके दुख दर्द मिट गये और वह सुख सम्पन्न जीवन व्यतीत करने लगे।

चल्लन बहुत पढ़ी लिखी और धर्म शीला रानी थी। उसने सारे मगध में जगह जगह यती और जैनी भिक्षुनियों के रहने के लिये हज़ारों विहार बनवाये। विद्या और कला कौशल की वह उन्नति हुई जिसका हिसाब नहीं। राजगृही नगर तो क्या सारे मगध देश में विद्या और पाडित्य का झण्डा फहराने लगा। इस रानी ने अपने पति से एक समय यह बात कही थी जो सुनहले अक्षरों में लिखे जाने योग्य है:—

"प्राण पति! किसी को उसके धर्म के लिये न सताना चाहिये, न अपने धर्म के ग्रहण करने के लिये दवाब डालना चाहिये किन्तु प्रत्येक मनुष्य को ऐसा अवसर देना चाहिये कि वह पढ़ लिख कर सोचनेसमझने के योग्य हो जाये उस समय यदि वह शरावक (जैन) धर्मअच्छा समझेगा तो आप ही सच्चे मन से और सच्चे अनुराग से उसे ग्रहण कर लेगा। धर्म अशोक इसी सिद्धान्त का अनुयायी था और उसके समय धर्म, विद्या प्रचार के प्रभाव से आप ही देश देशान्तरों में फैल गया।" श्रेणिक ने इसी के अनुसार काम किया और चल्लन ही के जीवन में सारे मगध देश में जैन धर्म की जय की ध्वनि गूँजने लगी। विद्या के प्रचार का यही परिणाम होता है।

यहाँ फिर हमको सोचने के लिये एक बात मिलती है। बौद्धों के समान जैनी भी धर्म अशोक को अपने ही पन्थ का अनुयायी समझते हैं। कौन जाने अशोक एक हुआ है या कई अशोक हुये हैं। एक विचार यह भी है कि प्राचीन समय में जैन और बुद्ध धर्म दोनों मिल जुलकर एक हो गये थे जैसा कि चीन जापान में अब भी है कि फनफ्यूशस और बुद्ध धर्म को कोई वहाँ

अलग अलग नहीं कह सकता।

चल्लन जैन धर्म पर जान देती थी। जीवन पर्यन्त विद्या की उन्नति के लिये प्रयत्न करती रही। राजा और रानी दोनों साथ साथ देश के पाठशालाओं, विहारों और चित्रशालाओं को देखने जाते थे। देश में शान्ति थी, और प्रजा सुखी थी। अभयकुमार ने अपनी सेना को इस योग्यता के साथ सजा रक्खा था कि किसी निकट या दूर के राजा को उसके साथ छेड़ छाड़ करने का साहस नहीं होता था।

चल्लन ने कई बार चाहा कि सुज्येष्ठा से मिले परन्तु वह साधवी हो चुकी थी इसलिये उसने न तो कभी चल्लन को अपने पास बुलाकर बातचीत करने का साहस किया और न यह स्वयं उसके विहार में गई। सुज्येष्ठा ने जीवन पर्यन्त मौनव्रत धारण कर रक्खा था क्योंकि वह पहिले बड़ी चंचल और बातूनी थी जिसका प्रमाण शैव सन्यासी के साथ बात चीत करते समय मिला था। धर्म्म वास्तव में उसी के कथनानुसार वाद विवाद का विषय नहीं है किन्तु साधन सम्पन्न जीवन व्यतीत करने का सिद्धान्त है। महल से बाहर आने पर उसका जीवन ही बना रहा।

कई साल पीछे श्रेणिक मर गया। तब चल्लन ने राज काज का काम उसके बड़े बेटे अभयकुमार को सौंपा और जब वह राज सिंहासन पर बैठ गया रानी ने भेंट देकर अशीर्वाद दी। अब उसने भी धर्म्म बीर महावीर स्वामी जिनेश्वर की सेवा में आकर सुज्येष्ठा के समान साधवी व्रत धारण किया। फिर सुज्येष्ठा के साथ उसी विहार में रह कर उसकी सेवा करने लगी और भिक्षुनियों के विहार की अध्यापिका बनकर अपने देश की लड़कियों

को पढ़ाने लगी। इसी काम में शरीर त्याग कर अरहन पदवी को प्राप्त किया। इसी सती के विशेष चरित्र जैनियों के ग्रन्थ में मिलेंगे हमने जो कुछ पढ़ा सुना था अपने ढंग पर औरों को भी सुना दिया।

वह समय कैसा प्रशंसनीय रहा होगा जब बुद्ध और जैन धर्म्म का इस देश में प्रचार रहा होगा। वास्तव में सत् युग और त्रेता की बड़ाई कहानी है। भारतवर्ष के इतिहास में यदि किसी समय को धर्म्मयुग कह सकते हैं तो वह केवल बौद्धों और जैनियों ही के राज शासन का समय था जब कि अहिंसा धर्म्म का प्रचार था। शेर और बकरी एक घाट पानी पीते थे।

धन्य थे वह लोग जो उस समय भारतवर्ष में उत्पन्न हुये थे और धन्य हैं अब भी वह लोग जो धर्म के राज को प्यार करते हैं।

विनती

१. दया कीजिये ! अपने चरणों में लीजे।
मेरी विनती सुनिये ! और ध्यान दीजे॥ १॥

—❀०❀—

२. दुखी दीन को है, तुम्हारा सहारा।
दुखी जीव है, संत सतगुरु को प्यारा॥ २॥

—❀०❀—

३. न माया करे छल न दुख हो भरम से।
न उकताऊँ घबराऊँ काल और करम से॥ ३॥

—❀०❀—

४. करूँ ध्यान सुमिरन भजन नित तुम्हारा।
रहे मन में केवल तुम्हारा सहारा॥ ४॥

५. तुम्हारा हूँ सेवक मेरे तुम हो स्वामी।
सदा राधास्वामी कमल पद नमामी॥ ५॥